RNI : UPHIN/2009/30450 ISSN : 2319-2178 (P) ISSN : 2582-6603 (O)

मधुराक्षर

सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक पुनर्निर्माण की पत्रिका

अक्टूबर, 2021

वर्ष : 13, अंक : 03, पूर्णांक : 33

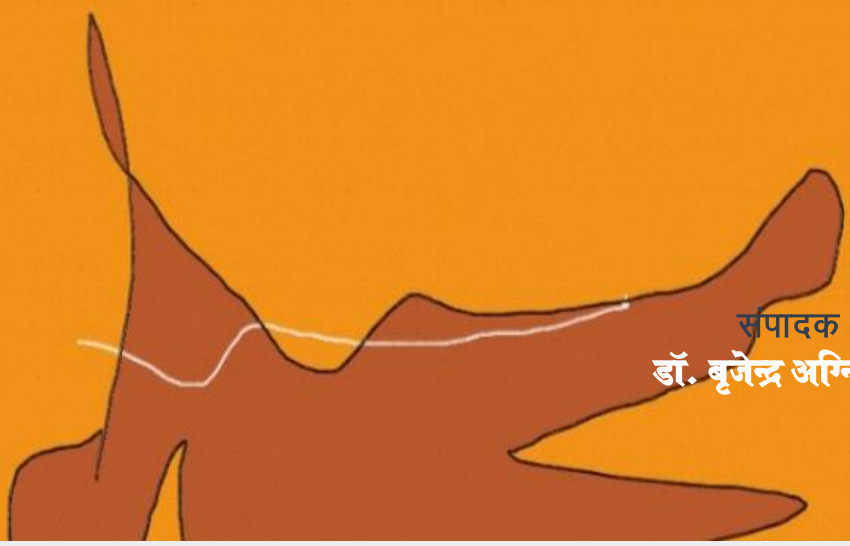

संपादक

डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

RNI : UPHIN/2009/30450 ISSN : 2319-2178 (P) ISSN : 2582-6603 (O)

संरक्षक परिषद
श्रीमती चित्रा मुद्गल
प्रो. गिरीश्वर मिश्र
प्रो. अशोक सिंह
प्रो. हितेंद्र मिश्र
डॉ. कृष्णा खत्री
डॉ. बालकृष्ण पाण्डेय
डॉ. अश्विनीकुमार शुक्ल

संपादक परिषद
डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री (संपादक)
श्री पंकज पाण्डेय (उप-संपादक)
श्रीमती शालिनी सिंह (उप-संपादक)
डॉ. चुकी भूटिया (उप-संपादक)
डॉ. ऋचा द्विवेदी (उप-संपादक)
डॉ. आरती वर्मा (उप-संपादक)

परामर्श-विशेषज्ञ परिषद
डॉ. दमयंती सैनी
डॉ. दीपक त्रिपाठी
श्री मनस्वी तिवारी
श्री राम सुभाष
श्री जयकेश पाण्डेय
श्री महेशचंद्र त्रिपाठी
डॉ. शैलेष गुप्त 'वीर'
श्री मृत्यंजय पाण्डेय

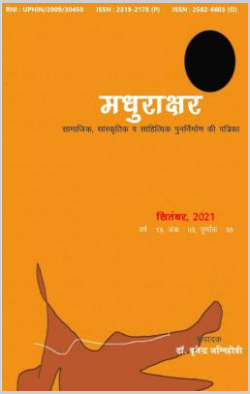

आवरण : **रोहित प्रसाद पथिक**

संपादक
डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

मधुराक्षर

सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक
पुनर्निर्माण की पत्रिका

अक्टूबर, 2021
वर्ष : 13, अंक : 03, पूर्णांक : 33

पूर्णतः अव्यावसायिक एवं अवैतनिक प्रकाशन

पूर्णतः अव्यावसायिक एवं अवैतनिक प्रकाशन

ई-संस्करण

सहयोग

एक प्रति : 30 रुपये

व्यक्तियों के लिए

वार्षिक : 110 रुपये
त्रैवार्षिक : 300 रुपये
आजीवन : 2500 रुपये

संस्थाओं के लिए

वार्षिक : 150 रुपये
त्रैवार्षिक : 450 रुपये
आजीवन : 5000 रुपये

विदेशों के लिए (हवाई डाक)

एक अंक : 6 $
वार्षिक : 24 $
आजीवन : 300 $

सदस्यता शुल्क का भुगतान भारतीय स्टेट बैंक की किसी शाखा में खाता क्रमांक- **10946443013** (IFS Code- SBIN0000076, MICR Code - 212002002) या 'मधुराक्षर' के बैंक खाता क्रमांक **31807644508** (IFS Code- SBIN0005396, MICR Code- 212002004) में करें।

मधुराक्षर में प्रकाशित सभी लेखों पर संपादक की सहमति हो, यह आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री की सत्यता व मौलिकता हेतु लेखक स्वयं जिम्मेदार है। पत्रिका में प्रकाशित किसी भी लेख पर आपत्ति होने पर उसके विरुद्ध कार्यवाही केवल फतेहपुर न्यायालय में होगी।

मुद्रक, प्रकाशक एवं स्वामी बृजेन्द्र अग्निहोत्री द्वारा स्विफ्ट प्रिन्टर्स, 259, कटरा अब्दुलगनी, चौक, फतेहपुर से मुद्रित कराकर जिला कारागार, मनोहर नगर फतेहपुर (उ.प्र.) 212601 से प्रकाशित।

सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक पुनर्निर्माण की पत्रिका

मधुराक्षर

सितंबर, 2021

संपादक
डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

संपादकीय कार्यालय
जिला कारागार के पीछे, मनोहर नगर, फतेहपुर (उ.प्र.) 212 601

E-Mail :
madhurakshar@gmail.com

Visit us :
www.madhurakshar.com
www.madhurakshar.blogspot.com

www.facebook.com/agniakshar

चलित वार्ता
+91 9918695656

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

एक नज़र में...

संपादकीय

अपनी बात — बृजेन्द्र अग्निहोत्री — .06

कथा–साहित्य

असली आनंद — रमेश पोखरियाल 'निशंक' — .11
ममता की छांव — महेश शर्मा — .17
वजूद — डॉ. रंजना जायसवाल — .30
रजनीगंधा मुरझा गए... — महेश कुमार केशरी — .36
अभिनय — राकेश कुमार तगाला — .44
चिंदीचोर — रजनी शर्मा — .50
कलयुग का सुदामा — सतीश 'बब्बा' — .55
काश... — वैदेही कोठारी — .58

कथेतर गद्य

मियां मंहगू का मज़मा — अंकुश्री — .61
मातृभाषा की महत्ता — शंकर लाल माहेश्वरी — .63
हीरे अधिक कीमती हैं या पेड़! — रंजना मिश्रा — .67
राष्ट्रीयता और सामाजिक चेतना के कवि दिनकर — डॉ. उर्मिला शर्मा — .71

संवाद

डॉ. हंसादीप का साक्षात्कार — डॉ. दीपक पाण्डेय — .77

समीक्षा

दृश्य से अदृश्य का सफर (उपन्यास), सुधा ओम ढींगरा — पंकज सुबीर — .105
यशोधरा (उपन्यास), अनघा जोगलेकर — नूतन पाण्डेय — .113

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

काव्य–सुरसरि

आषाढ़ का एक दिन : संदर्भ पुराने, अर्थ नए	डॉ. जयप्रकाश तिवारी	.118
दो गजलें	विज्ञान व्रत	.120
स्वार्थ से परिपूर्ण बुद्धिमत्ता	सारिका शर्मा	.121
नारी तुम शक्तिपुंज	सुरभि श्रीवास्तव	.123
नियति की अनीति	शुचि गुप्ता	.124
उसका नाम मोहब्बत है	सोनल ओमर	.125
तुम्हारे लिए	रीता मिश्रा तिवारी	.126
स्वर्ण ज्योत्स्ना–सी	अंकिता गौराई	.127
तराश दो मुझे	रंजना फतेपुरकर	.128
गजल	फारुक सुलेमानी	.129
गीतिका	डॉ. विनय कुमार श्रीवास्तव	.130

अपनी बात

हिंदी किसी एक भाषा का नहीं, अपितु एक भाषा समष्टि का नाम भी है। भारत के विशाल परिक्षेत्र में फैली भाषा के क्षेत्रीय भेद होने स्वाभाविक हैं। इन भेदों में से अनेक में साहित्य–रचना का होना संभव है। अनेक भेद ऐसे भी हो सकते हैं जो मौखिक व्यवहार रूप में ही प्रयुक्त होंगे, और जिनमें केवल लोक–साहित्य ही उपलब्ध होंगे। यही स्थिति हिंदी कि भी है। हिंदी के अनेक रूप ऐसे हैं, जिनमे साहित्यिक–रचना होती है और अनेक रूप ऐसे हैं जो केवल अपने–अपने क्षेत्र में जनसाधारण के व्यवहार में ही प्रयुक्त होते हैं। उन रूपों को जिनमें यथेष्ट साहित्य रचा जा चुका है, साहित्यिक रूप कि संज्ञा दी गयी है और शेष को ग्रामीण रूप कहा गया है।

हिंदी का राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयोग भारतीय संविधान में कहीं नहीं है। हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता स्वतंत्रता आंदोलन में देश के नेताओं ने देश को एकता के सूत्र में बांधने के लिए दी थीय क्योंकि हिंदी ही भारत कि एक ऐसी भाषा थी जो देश में सर्वाधिक लोगों द्वारा बोली और समझी जाती थी। स्वतंत्रता आंदोलन को देशव्यापी बनाने के लिए आवश्यकता इस बात कि थी कि कोई ऐसी भाषा चुनी जाये, जिसके माध्यम से स्वाधीन भारत का उद्घोष सारे देश में फैल सके। समय की मांग को देखते हुए भारतीय नेताओं ने, चाहे उनका सम्बन्ध देश के किसी भी कोने से रहा हो, यह अनुभव किया कि सारे देश की भाषा यदि कोई भाषा हो सकती है तो वह 'हिंदी' ही है, और हिंदी को ही संपूर्ण देश के लिए संपर्क भाषा बनाने का निश्चय किया गया। 'गुजरात के महात्मा गाँधी, कश्मीर के जवाहरलाल नेहरू, महाराष्ट्र के लोकमान्य तिलक, बंगाल के रवीन्द्रनाथ ठाकुर, पंजाब के लाला लाजपतराय, दक्षिण के चक्रवर्ती राजगोपालाचारी आदि अनेक नेताओं एक स्वर से हिंदी को 'राष्ट्रभाषा' घोषित किया। हिंदी स्वतंत्रता आंदोलन में शंखनाद की भाषा बनी।'

भारत के स्वाधीन होने पर जब संविधान में देश कि प्रधान भाषा होने कि बात उठी तो 'राष्ट्रभाषा' कि संकल्पना जो स्वतंत्रता के पूर्व थी, नहीं रही। स्वतंत्रता के पूर्व जो छोटे–बड़े नेता राष्ट्रभाषा या राजभाषा के रूप में हिंदी को अपनाने के मुद्दे पर सहमत थे, उनमें से अधिकांश गैर–हिंदी भाषी नेता 'हिंदी' के नाम पर बिदकने लगे। अब

राष्ट्रभाषा का अर्थ राष्ट्र की भाषा से लिया गया और सभी भारतीय भाषाओं को राष्ट्रभाषा माना गया. राष्ट्र की प्रमुख भाषाओं की गणना अष्टम अनुसूची में की गयी और अन्य चौदह भाषाओं के साथ हिंदी को भी स्थान दिया गया। 'संविधान सभा में केवल हिंदी पर विचार नहीं हुआ, राजभाषा के नाम पर जो बहस 11 सितंबर, 1949 ई. से 14 सितम्बर 1949 ई. तक हुई, उसमें हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत एवं हिन्दुस्तानी के दावे पर विचार किया गया।' यहाँ यह उल्लेखनीय है कि संघर्ष की स्थिति सिर्फ हिंदी और अंग्रेजी के समर्थकों के मध्य ही देखने को मिली. आजाद भारत में के विदेशी भाषा (अंग्रेजी), जिसे देश की बहुत कम आबादी ही पढ़–लिख–समझ सकती थी, देश की राजभाषा नहीं बन सकती थी. हिंदी देश की जनता की भाषा थी। देश की लगभग आधी आबादी हिंदी को उपयोग में लाती थी, इसलिए हिंदी का दावा न्याययुक्त था। संविधान सभा के भीतर और बाहर हिंदी के विपुल समर्थन को देखकर संविधान सभा ने हिंदी के पक्ष में अपना फैसला दिया।

संविधान में हिंदी को राजभाषा का दर्जा देते हुए उसके स्वरूप, क्षेत्र और दायित्वों का विवेचन विस्तार से किया गया है। संविधान में अनुच्छेद– 120 और 210 के अतिरिक्त 343 से 351 तक (29) ग्यारह अनुच्छेदों में संघ और राज्यों के सरकारी प्रयोजनों के लिए संसद और विधानमंडलों में प्रयुक्त होने वाली भाषा, न्यायालयों में प्रयुक्त भाषा, संघ और राज्यों के बीच प्रयुक्त होने वाली भाषा और राज्यों के आपस में संप्रेषण माध्यम के रूप में प्रयुक्त होने वाली भाषा के संबंध में अलग–अलग व्यवस्था दी गयी है। अनुच्छेद–120 के अनुसार– "संसद का कार्य हिंदी में या अंग्रेजी में किया जायेगा, परन्तु यथास्थिति लोकसभाध्यक्ष या राज्यसभा का सभापति किसी सदस्य को उसकी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुमति दे सकता है। संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तो 15 वर्ष की अवधि के पश्चात 'या अंग्रेजी में' शब्दों का लोप किया जा सकेगा।" अनुच्छेद–210 उपरोक्त व्यवस्था राज्यों के विधानमंडलों में प्रयुक्त होने वाली भाषाओं के संबंध में प्रदान करता है। अनुच्छेद–343 में संघ की राजभाषा 'हिंदी' और लिपि 'देवनागरी' को घोषित किया गया है। अंकों का प्रयोग वही होगा जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चलन में है। अनुच्छेद–344 राष्ट्रपति द्वारा राजभाषा आयोग एवं समिति के गठन

से संबंधित है. अनुच्छेद–345, 346 और 347 में प्रादेशिक भाषाओं से संबंधित प्रावधान हैं। अनुच्छेद–348 में उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों, संसद और विधानमंडलों में प्रस्तुत विधेयकों की भाषा के संबंध में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। अनुच्छेद–349 में भाषा से संबंधित विधियाँ अधिनियमित करने की प्रक्रिया का वर्णन है। अनुच्छेद–350 में जनसाधारण की शिकायतें दूर करने के लिए आवेदन में प्रयुक्त की जाने वाली भाषा तथा प्राथमिक स्तर पर शिक्षण–सुविधाएं देने और भाषायी अल्पसंख्यकों के बारे में दिशा–निर्देश देने का प्रावधान है। अनुच्छेद–351 में सरकार के उन कर्तव्यों और दायित्वों का उल्लेख किया गया है, जिनका पालन हिंदी के प्रचार–प्रसार और विकास के लिए सरकार को करना है। उपरोक्त के अतिरिक्त राष्ट्रपति ने अधिसूचना सं. 59/2/54, दिनांक : 03–12–1955 के द्वारा 'सरकारी प्रयोजनों के हिंदी भाषा आदेश, 1955' को जारी किया है, जिसके द्वारा अंग्रेजी के साथ हिंदी का प्रयोग निम्नलिखित कार्यों हेतु किया जा सकता है–

- ✓ जनता के साथ पत्र–व्यवहार के लिए।
- ✓ प्रशासनिक रिपोर्ट, सरकारी संकल्प, संसद में प्रस्तुत की जाने वाली रिपोर्ट के लिए।
- ✓ हिंदी–भाषी राज्यों के साथ पत्र–व्यवहार के लिए।
- ✓ अन्य देश की सरकारों और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ पत्र–व्यवहार के लिए।
- ✓ संधियों एवं ऋणों के लिए।

संविधान के अनुच्छेद–343 के अनुसार– 15 वर्षों की अवधि के बाद अर्थात् 1965 ई. में हिंदी को पूर्णतया अंग्रेजी का स्थान लेना था, किंतु जब यह देखा गया (या यह कहें कि राजनीतिक स्वार्थों के कारण) हिंदी सरकारी कार्यालयों में लोकप्रियता से वंचित है तो संसद को 1965 के बाद भी अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने के लिए अधिनियम बनाना पड़ा। इस अधिनियम में जो धाराएं हैं, उनमें मुख्यतः इन बातों का उल्लेख है– "धारा–3 (i) में यह व्यवस्था है कि संविधान के प्रारंभ से 15 वर्ष की कालावधि समाप्त हो जाने पर भी हिंदी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा संघ के उन सब शासकीय प्रयोजनों के लिए, जिनके लिए वह उस दिन तक के ठीक पहले लायी जाती थी तथा 3(ख) संसद में कार्य के संव्यवहार के लिए प्रयोग में लायी जाती रह सकेगी।"

इस अधिनियम की धारा–4 के अनुसार– राजभाषा के संबंध में एक संसदीय समिति गठित की गयी थी, जो अभी तक अपना कर रही है। साथ ही सन 1968 ई. में राजभाषा के संबंध में एक संकल्प पारित किया गया, जिसमें सरकार द्वारा हिंदी के प्रगामी प्रयोग के संबंध में वार्षिक मूल्यांकन रिपोर्ट संसद में प्रस्तुत करने की व्यवस्था है। सन 1975 ई. में गृह मंत्रालय के अंतर्गत राजभाषा विभाग की स्थापना की गई है, जिससे कि केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में हिंदी के प्रयोग को तेजी से बढ़ाया जा सके।

संविधान में हिंदी को यह स्थान इसलिए नहीं दिया गया था कि यह देश की सबसे प्राचीन या समृद्ध भाषा है, बल्कि इसलिए दिया गया था, क्योंकि यह भाषा भारत के अधिकांश भागों में अधिकतर लोगों द्वारा बोली और समझी जाती है। श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी के शब्दों में– "हिंदी वास्तव में किसी एक ही भाषा अथवा बोली का नाम नहीं है, अपितु एक सामासिक भाषा परंपरा की संज्ञा है, जिसका आकार–प्रकार विभिन्न उपभाषाओं और बोलियों के ताने–बने द्वारा निर्मित हुआ है।" इस प्रकार हिंदी एक भाषा समष्टि का नाम है। इसकी पुष्टि संविधान के अनुच्छेद–351 में हिंदी के विकास के लिए जो निर्देश दिए गये हैं, से भी होती है। इसके अनुसार– 'हिंदी में शब्द मूलतः संस्कृत से या गौणतः अन्य भारतीय भाषाओं से लिए जाएं. भारत की प्रायः सभी भाषाओं पर संस्कृत का अमिट प्रभाव है।'

कोई भी भाषा केवल प्रयोग से समृद्ध होती है। भाषा किसी प्रयोगशाला में तैयार करने के बाद रिवाज या चलन में नहीं लायी जाती। अति–समृद्ध और भारत में हिंदी की 'सौत' का दर्जा पाने वाली अंग्रेजी भाषा का ही उद्धरण ही लें– '1362 तक इंग्लैंड की राजभाषा फ्रेंच के स्थान पर अंग्रेजी होगी, विदेशी भाषा नहीं। तीन महीने बाद ही पहली जनवरी 1963 से अंग्रेजी प्रशासन का माध्यम बन गयी।' 1700 ई. तक अर्थात् शेक्सपीयर के 100 वर्ष बाद तक पढ़े–लिखे लोग अंग्रेजी को गंवारू भाषा कहते रहे, परंतु अंग्रेजी चलती रही और उसका विकास होता रहा। उपरोक्त प्रथम उद्धरण उस देश की संकल्प–शक्ति को दर्शाता है। साथ ही हमें यह एहसास भी दिलाता है कि हमारे संविधान निर्माताओं की निर्बल इच्छाशक्ति का फल 'हिंदी' भुगत रही है। वहीं दूसरा उद्धरण यह विश्वास दिलाता है कि एक न एक दिन 'हिंदी' अपने वैभव व वास्तविक संवैधानिक स्थान को अवश्य

प्राप्त करेगी। संकुचित राजनैतिक स्वार्थों के कारण हिंदी के समक्ष बिखराव की समस्या प्रायः उत्पन्न होती रही है। संविधान द्वारा हिंदी को सरकारी काम–काज की भाषा घोषित कर देने के बाद, यह एक चर्चा का मुद्दा बन गया, जो निर्धारित रूपरेखा से बिलकुल भिन्न रहा। अज्ञानतावश प्रतिक्रियास्वरूप इसे कहीं राजनैतिक विवाद का मुद्दा बना लिया जाता है, और कहीं रोजी–रोटी के सवाल के साथ जोड़ दिया जाता है। आज भी यह स्वर कहीं न कहीं सुनाई पड़ जाता है–

'हिंदी थोपी जा रही है.....'

या

'हिंदी लादी जा रही है...'

अथवा

'हिंदी औपनिवेशिक भाषा है...'

यहाँ विचारणीय यह है कि प्रजातंत्र में थोपने–लादने कि स्थिति क्या हो सकती है....? हमें स्वयं इस तथ्य की तह तक पहुँचकर यह विचार करना चाहिए कि जो भाषा संपूर्ण भारत में एकता स्थापित करने के लिए 'राजभाषा' घोषित की गयी है। जो भाषा देश की भावात्मक एकता को मजबूती से बांधे हुए है, उसके लिए 'लादने' और 'थोपने' जैसे शब्दों का प्रयोग कितना उचित है ? क्या हमें उसे सामान्य व्यव्हार का सशक्त उपकरण नहीं मानना चाहिए ? जब किसी देश में कोई भाषा दो–तिहाई से अधिक लोगों द्वारा बोली जाती है तो क्या उसे उस देश या संघ की भाषा का दर्जा नहीं मिलना चाहिए ?

संविधान के अनुच्छेद–351 के अनुसार– 'हिंदी को विकसित और समृद्ध करने की जिम्मेदारी केंद्र सरकार की है। तो हमारी जिम्मेदारी क्या है ? संविधान के प्राविधानों का पालन करने–कराने का दायित्व क्या केवल सरकार का है, क्या जनता का कोई दायित्व नहीं है ? ध्यातव्य है कि संविधान के सभी प्राविधान देश की जनता के लिए होते हैं, और जनता के रोज के क्रियाकलापों को प्रभावित करते हैं। इसलिए देश की जनता का भी यह कर्तव्य है कि वह हिंदी का प्रसार बढ़ाने और उसके विकास में भरपूर योगदान करें।

-बृजेन्द्र अग्निहोत्री

कहानी

रमेश पोखरियाल 'निशंक'
37/1 विजय कॉलोनी, रवींद्रनाथ टैगोर मार्ग,
देहरादून, उत्तराखंड
nishank.sahitya@gmail.com

असली आनंद

मैंने जैसे ही हाल में प्रवेश किया, वह भीड़ को चीरता मेरे कदमों में लम्बवत आ गिरा। उसके इस अप्रत्याशित व्यवहार से मैं अचानक हड़बड़ा उठा और उतनी ही तेजी से दो कदम पीछे हट गया। वह फिर आगे घिरकर मेरे नजदीक पहुँच गया और मेरे दोनों पैर पकड़ लिये।

''मैं भटक गया था सर, मेरा जीवन बचा लो।' वह बड़बड़ाता हुआ मिन्नत कर रहा था।

मुझे उसके इस व्यवहार पर बहुत गुस्सा आया– 'कौन हो तुम, खड़े उठो।' मैंने कड़क कर कहा।

मेरा इतना कहना था कि भीड़ में शामिल कई लोगों ने उसे एक साथ उठा लिया और मेरे सामने खड़ा कर लिया। अब वह गर्दन झुकाये हुये दीन–हीन की तरह हाथ जोड़े मेरे सामने सुबक रहा था। न जाने क्यों मुझे उसका चेहरा जाना पहचाना सा लगा, दिमाग पर

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

जोर दिया, किन्तु तब भी कुछ याद नहीं आया। खण्ड विकास अधिकारी के रूप मे मैं दो वर्ष पहले भी कार्य कर चुका था। प्रशासनिक सेवा में चयन होने पर इस जिले में पहली बार विकास अधिकारी के रूप में छः साल बाद मेरी नियुक्ति यहाँ हुई थी। अभी दो दिन पहले ही मैंने यहाँ पर ज्वाईन किया था, लेकिन ऑफिस आज पहली बार आया था। इन दो दिनों में मैंने अपने आवास कार्यालय में ही बैठकर जनपद से सम्बन्धित इतिहास, भूगोल, क्षेत्रीय समस्याओं और विकास कार्यों से सम्बन्धित अनेक जानकारियाँ जुटाई थी।

आज पहले दिन ही नगर के प्रबुद्धजनों और आम जनता से मुलाकात की दृष्टि से विकास भवन के इस बड़े से ऑडिटोरियम में मिलन कार्यक्रम रखा गया था। ऑडिटोरियम के दोनों ओर जनपद के सभी प्रमुख अधिकारियों के लिये कुर्सीयाँ लगी थी, जबकि प्रतिनिधियों, प्रबुद्धजनों और आम जनमानस के लिये हॉल के बीचों–बीच कुर्सियों का इन्तजाम था, जिस पर कि मेरे आने से पूर्व ही काफी लोग डटे हुये थे। भीड़ इतनी अधिक थी कि लोग गैलरी से लेकर प्रवेश द्वार तक खड़े हो रखे थे। मेरे वहाँ प्रवेश करते ही अधिकारीगण अपनी–अपनी कुर्सियों से उठ गये, किन्तु इस व्यक्ति द्वारा अकस्मात मेरे पैरों में गिर पड़ने से वहाँ हड़बड़ी जैसे माहौल हो गया था।

''अरे इस आदमी को बाहर ले जाओ, साहब से बदतमीजी कर रहा है।'' मेरे कड़क रूख के चलते कुछ लोगों ने बाहर से सुरक्षा गार्ड को बुला लिया। एक नहीं चार–चार सुरक्षा गार्ड जिन्न की तरह तुरन्त प्रकट हो गये, चारों ने उसे इस तरह जकड़ लिया मानों कोई आतंकवादी हाथ में आ गया हो।

''नहीं छोड़ दो इसे।'' मैंने स्थिति को संभालने के दृष्टिकोण से कुछ शान्त होकर कहा, सुरक्षा गार्ड एकदम से मशीनी रोबोटो की तरफ एक–एक कदम पीछे हट गये।

''कौन हो तुम और इस तरह की हरकत क्यों की तुमने।'' मैंने पूछा, अब वह मेरे सामने खड़ा था।

''सर मैं विनय, नहीं पहचाना सर ? मैं विनय हूँ, आपका विकास खण्ड कार्यालय वाला सहकर्मी।'' वह एक श्वॉस में बोल गया।

''विनय?'' दिमाग पर कुछ जोर डालकर सोचा तो सब कुछ याद आता चला गया।

''यार राहुल क्या रस है तुम्हारे जीवन में ? न घूमना न फिरना, न मौज न मस्ती, न शराब न बीडी न सिगरेट।'' मेरी सामने वाली टेविल पर साथियों के साथ शराब के जाम छलकाता विनय ने मुझसे कहा।

''नही यार, जो कुछ तुम कह रहे हो उसमें मुझे जरा भी दिलचस्पी नहीं।'' मैंने संयमित भाव से जवाब दिया।

''अरे काम तो जिंदगीभर करना है, किन्तु इसके अतिरिक्त भी तो कुछ और होता है जीवन में उसका आनन्द कब उठाओगे।'' उसने फिर बात को आगे बढ़ाया।

''इस सबमें क्या आनन्द है विनय, यह मेरी समझ से परे है। मुझे तो अपने काम में ही आनन्द आता है।'' मैंने उसके तर्क को काटते हुये चाय समाप्त की और वहाँ से उठने का उपक्रम किया।

''अरे ये तो ऐसे ही मर जायेगा बेचारा, बिना जीवन का आनन्द लिये।'' विनय ने फिर से खिल्ली उड़ाने वाले अंदाज में हँसकर कहा तो चारों दोस्त फिर ठहाका लगाकर हँसने लगे।

मुझे बुरा नहीं लगा, बल्कि उनके ठहाकों के जवाब में मैंने मुस्कुराकर हाथ जोड़े और बाहर निकल आया। ''आप लोग ले लो मेरे बदले का आनन्द भी।''

ऐसा मेरे साथ पहली बार नहीं हुआ था, अपितु अक्सर होता रहता था। पहाड़ के इस दूरस्थ विकासखण्ड में खण्ड विकास अधिकारी के रूप में मेरी नियुक्ति हुई थी। पहाड़ का एक छोटा सा कस्बानुमा स्थान था यह, जहाँ पर ब्लॉक कार्यालय की बड़ी सी बिल्डिंग थी।

कस्बे की छोटी बाजार के अन्दर ही पोस्ट ऑफिस, स्टेट बैंक, सहकारी बैंक और खाद–बीज का कार्यालय सहित इण्टर कॉलेज का भव्य भवन और एक अस्पताल भी था। सब्जी, राशन, फल मिठाई, चाय पानी आदि की दो दर्जन से अधिक दुकानों के साथ ही एक टूरिस्ट रेस्ट हाउस भी यहाँ पर था।

एक प्रकार से यह इस क्षेत्र के दस किमी के अन्दर के निकटवर्ती गाँवों की एक मण्डी की तरह था। तीन तरफ से सड़कें यहाँ आकर मिलती थी। तीनों तरफ से अलग–अलग समय पर बसें नियत समयानुसार आती–जाती थी। सुबह की पहली बसें पहुँचने के साथ ही बाजार में लोगों की भीड़ हो जाती, लोग गाँवों से बैंक, पोस्ट

ऑफिस, हॉस्पिटल आदि के कामों से आते, जरूरत की चींजे खरीदकर आखिर की पाँच बजे वाली बसों से लौटक जाते, तो स्थानीय दुकानदार भी अपनी दुकानें बन्द कर घरों को लौट जाते, पिफर तो यहाँ सन्नाटा सा पसर जाता, सरकारी विभागों में काम करने वाले दूर के कर्मचारी ही यहाँ पर बचते। इस नाते सभी से अच्छा परिचय हो गया था। साम के समय चलते–फिरते या घूमते हुये सबसे मुलाकात हो ही जाती थी।

विनय भी मेरे साथ विकास खण्ड कार्यालय में इन्जीनियर था। हम दोनों की उम्र और ओहदा लगभग एक समान होने और इस छोटी जगह में सीमित बाहरी कर्मचारी होने के कारण हम एक–दूसरे के अच्छे मित्र भी बन गये थे।

''चलो शाम को तुम मेरे आवास पर आओ, वहीं पर बातें करेंगे।'' मेरा ऐसा कहना था कि विनय सेकेंड भर में वी. आई.पी. बन गया हो जैसे।

सांय पाँच बजे कार्यालय बन्द होने के बाद मैं बाजार में शरतू लाला की चाय की दुकान पर पहुँच जाता और एक गिलास चाय जरूर पीता। काला–कलूटा शरत लाला लाल मिट्टी से पुती भट्टी के ऊपर बने ठीये पर विराजमान रहता, उसकी भट्टी में बांज और बुरांश के मोटे–मोटे गेले चौबीसों घण्टे सुलगते रहते, चूल्हे में एक बड़ा सा केतला और पीछे एक कढ़ाई हर समय सजी रहती। वहीं पर रोज विनय से मुलाकात हो जाती, वह लगभग रोज ही दोस्तों के साथ जाम टकराता मिलता।

शरतू लाल दुकान के अन्दर शराब पीने वालों को कभी रोकता–टोकता नहीं, वरन् उनको ज्यादा प्रोत्साहन देता, इस बहाने उसके पकोड़े और उबले हुये अन्डे भी बिक जाते। इसके साथ ही कभी–कभार वह स्टील का एक बड़ा सा गिलास दुकान में काम करने वाले लड़के को पकड़ा देता।

''ऐ छोकरे ये गिलास रख दे सामने साहब के सामने।''

और पीने वाले लोग एक बड़ा सा पैग बनाकर स्टील का गिलास वापस उस छोकरे को पकड़ा देते। आम के आम गुठलियों के दाम वाली बात को चरितार्थ करने वाला शरतू लाल कभी किसी से फालतू नहीं बोलता, बस अपने काम में लगा रहता है। उसके दांयी तरफ बाबा आदम के जमाने का लगने वाला एक रेडियो चौबीसों घण्टे बजता रहता। रेडियो में कौन सा स्टेशन बज रहा है और क्या बज रहा उससे शरतू लाल को कोई मतलब नहीं रहता। उसे तो सिर्फ इस बात से मतलब रहता कि रेडियो बज रहा है। मैं इस सब दृश्य का खूब आनन्द लेता, क्योंकि इसके अलावा यहाँ पर मनोरंजन करने का अन्य कोई भी साधन नहीं होता।

इस जगह पर मेरी युवावस्था के दो महत्वपूर्ण वर्ष गुजरे, इन्हीं दो वर्षों मे मैंने प्रशासनिक सेवा परीक्षा की पूरी तैयारी की। परीक्षा में सफल होने पर मुझे पहली नियुक्ति जिला गोंडा में मिली जहाँ मैंने छः साल तक काम किया और अब पहाड़ के इस जनपद में मैं पुनः स्थानान्तरित होकर आया था।

''तुम्हारी ये हालत कैसे हो गई विनय ?'' मैंने स्वभाव में कुछ नर्मी लाते हुये कहा तो उसने गर्दन उठा ली।

''बस साहब आप तो सब जानते ही हैं, उसी संगत में बर्वाद हो गया मैं।'' उसकी आँखों से आँसू निकल आये।

''ओह।'' मैंने दुःख व्यक्त किया।

''चलो शाम को तुम मेरे आवास पर आओ, वहीं पर बातें करेंगे।'' मेरा ऐसा कहना था कि विनय सेकेंड भर में वी.आई.पी. बन गया हो जैसे। सब लोग उसे ऐसे देखने लगे मानों वह मेरा सबसे नजदीकी रहा हो और अब उसके द्वारा ही उनके काम भी सम्पन्न हो जायेंगे।

''सर! कोई विनय नाम का गाँव का आदमी आपसे मिलने आया है। अपने आप को आपका पुराना दोस्त बताता है।'' शाम को एक चपरासी मेरे पास आकर बोला। मैंने उसे आदर के साथ अन्दर बुला लिया।

इस बार मुझे उसके चेहरे में एक रौनक दिखी। कपड़े भी कुछ ठीक–ठाक पहने थे उसने।

''क्या कर रहे हो आजकल।'' मैंने ही बात की शुरूआत की।

''क्या करना है साहब, नौकरी नहीं रही, पत्नी भी घर छोड़कर चली गई। बस अब गाँव में ही हूँ, दिहाड़ी मजदूरी करके पेट पाल रहा हूँ।'' उसने अपनी दास्तान बताई।

''लेकिन यह सब हुआ कैसे ?'' मुझे उसके मुँह से अपने लिये साहब सुनना अच्छा नहीं लगा कुट अटपटा सा, क्योंकि वह मुझे सीधे नाम से ही पुकारता था।

''आपको तो सब मालूम है। इन्जीनियरिंग के क्षेत्र में ठेकेदारों से रोज ही पाला पड़ता था। बस उनके झांसे में आकर शराब–मुर्गा की बुरी आदत लगा बैठा, उसी को असली जिन्दगी समझ बैठा, फिर धीरे–धीरे निर्माण कार्यों में शिकायतें आने लगी। ठेकेदार उपहार में शराब–मुर्गा ले आते और बदले में एम.बी. में हस्ताक्षर करवा लेते, फिर एक दिन शिकायत जिले तक चली गई। विकास अधिकारी ने जाँच बैठा दी। जाँच में बीस लाख रुपये की गड़बड़ मिली।'' वह धाराप्रवाह बोले जा रहा था, वह थूक निगलने के लिये कुछ देर रुका मुझे उसकी कहानी से दुःख पहुँच रहा था।

''फिर''– मैंने आगे की कहानी सुनने के लिये पूछा।

''फिर क्या ? मैंने पैसे कहाँ से जमा करता। सबकुछ तो खाने–पीने में गंवा दिया। विकास अधिकारी ने मुझे बर्खास्त कर दिया, पुलिस ने जेल भिजवा दिया। छः महीने बाद जेल से छूटकर आया तो पत्नी भी घर छोड़कर चली गई थी। फिर मैं कहीं का न रहा।'' उसने कहानी समाप्त की।

''तो अब मुझसे क्या चाहते हो?'' मैंने जिज्ञासावश पूछा।

''कोर्ट में केस चल रहा है। मुझे विकास अधिकारी ने बर्खास्त किया था। कोर्ट कहती है कि यदि विकास अधिकारी चाहें तो मानवीय दृष्टिकोण से सरकार फिर बहाल कर सकती है।'' उसने अपना असली मन्तव्य बतलाया।

''मतलब तुम मुझसे संस्तुति चाहते हो।'' मैंने पूछा।

''जी।'' उसने हाथ जोड़ दिये। अब मैं सुधर गया हूँ। जीवन का असली आनन्द अब मेरी समझ में आ गया है।'' उसके स्वर में मैंने कम्पन्न महसूस की।

मैं उस विनय और इस विनय में भेद कर पाने में असमर्थ था। समझ नहीं पा रहा था कि उसे क्या कहकर वापस भेजूँ।

कहानी

महेश शर्मा
224, सिल्वर हील कालोनी धार
जिला धार मध्य प्रदेश
sharma.mahesh46@yahoo.com

ममता की छांव

मनुष्य अपनी जिजीविषा से विपरीत परिस्थितियों को बदलने की कोशिशें लगातार करता रहा है। इसमें सफल भी होता है लेकिन जीवन के अनदेखे उतार–चढ़ाव वह कहाँ समझ पाता है। अपनी समृद्धि का अपने सुखों का विस्तार अपने परिवार के पूर्ण फैलाव और अपनी मेहनत, त्याग, तपस्या से सजाया गया अपना वर्तमान जिस में रहते हुए भी कोई मनुष्य अपने अगले क्षण के प्रति किंचित भी विश्वस्त नहीं रह सकता। शायद यही वह अज्ञात अनियंत्रित कारक है जिसे भाग्य कहते हैं और जिसे कभी कोई अपने वश में नहीं कर पाया

कैंसर हॉस्पिटल के गेट पर खड़ी अनुषा इन्हीं विचारों में खोए ऑटो का इंतजार कर रही थी। पिछले 15 सालों के कष्ट्मय दुरुह जीवन जीते जिसकी कीमत भरपूर त्याग और तपस्या से चुकाने के बाद भी, आज वह फिर इस विषम दुर्भाग्य वाले मोड़ पर आ चुकी थी,

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

जहाँ से कुछ ही दूरी पर वह अनंत गहरी अंधेरी खाई थी, जिसका कोई ओर छोर नहीं था। और जिस से बचने के कोई साधन भी नजर नहीं आ रहे थे। केवल पिछले छह महीने में स्थितियाँ क्या से क्या हो चुकी थी, जब डॉक्टर ने स्पष्ट घोषित कर दिया था कि अमर बाबू को कैंसर है। और अब उनके पास साल छह महीने से ज्यादा का समय नहीं है। स्तब्ध रह गई थी अनुषा डॉक्टर की बात सुनकर। यद्यपि अमर बाबू पिछले दो साल से बीमार चल रहे थे। कभी कम कभी ज्यादा और परिवार वालों को अंदेशा था कि किसी घातक बीमारी का आक्रमण हुआ है। लेकिन अच्छे डॉक्टर से चेकअप या इलाज न करवाना ही मुख्य कारण रहा होगा जब सिर्फ छह माह पहले यह पता चला कि अमर बाबू को कैंसर है जो कि अब काफी बढ़ चुका है, और नियंत्रण के बाहर है।

कैंसर से बचने के, उसे हराने के कमजोर से प्रयास छह माह से जारी थे। हर आठ दिन में अस्पताल आना, चेकअप कराना, थेरेपी कराना और वापस जाना यह सब कुछ चल रहा था। सामने आते ऑटो को देखकर अनुषा एकदम वर्तमान में लौटी। आटो रुकवाया, लालगंज चलो ऑटो में बैठ अनुषा ने बाहर नजरें घुमा कर कैंसर अनुसंधान एवं उपचार संस्थान की विशाल इमारत पर नजर डाली, जिसके चौथे फ्लोर पर रूम नंबर 42 में कृषकाय शरीर लिए हुए बिस्तर पर लेटे थे अमर बाबू। और उनके सिरहाने बैठे थे उनके दोनों बेटे अरुण जो कि 22 साल का था और वरुण जो 18 साल का था। दिनभर अस्पताल में अपने पति के सिरहाने बैठी अनुषा अमर बाबू के सिर में हाथ फेरती रही थी। उन्हें दिलासा देती रही थी।

शाम को दोनों बेटों को अमर बाबु के पास छोड कर रात का खाना लेने घर जा रही थी अनुषा। ऑटो चल पड़ा था अनुषा ने सोचना छोड़ कर वर्तमान में बने रहने की कोशिश की, लेकिन वह अमर बाबू का विलाप जरा भी नहीं भूल पा रही थी। दिन में कम से कम चार पाँच बार रो–रो कर अनुषा का हाथ पकड़ कर अपने सीने से लगाते हुए विलाप करते रहते थे अमर बाबू। यद्यपि उन्हें कैंसर का या मर जाने का डर कतई नहीं था। उन्हें संताप था अनुषा को इस तरह मझधार में छोड़ कर जाने का। वह रोते–रोते बदहवासी में

बार–बार कहते– अनुषा मैं तुम्हारा अपराधी हुँ। मैं तुम्हें मझधार में छोड़ कर जा रहा हूं। जब मुझ पर संकट आया था, मैं अकेला हो गया था, जीवन से निराश हो गया था तब तुमने आगे बढ़कर मेरा हाथ थामा। मुझे सहारा दिया और मेरे बच्चों को माँ का प्यार दिया। तुमने हम सबका जीवन संवार दिया और आज मैं तुम्हें बीच रास्ते में छोड़ कर जा रहा हूँ। मैं खुद को कभी भी माफ नहीं कर पाऊँगा। क्या कहती अनुषा सिर्फ दिलासा ही तो दे पा रही थी। बड़े प्यार से बड़े विश्वास से अमर बाबू का हाथ अपने हाथों में लेकर उनके गालों पर हाथ फेरते कहती– प्लीज देखो ऐसी बातें ना करो। इन बातों पर किसी का कोई बस नहीं चलता। किसी का दोष नहीं कल जो हुआ था वह भी हमारे बस में नहीं था और आज जो यह सब हो रहा है, वह भी हमारे बस में नहीं है। भगवान सब अच्छा करेगा आप धैर्य रखो। अनुषा कह तो रही थी, पर जान रही थी कि अब धैर्य रखने से भी कुछ नहीं होगा।

–बहन जी लालगंज आ गया है कहाँ उतारुँ ?

–वह सामने चौराहे पर पेड़ के पास।

ऑटो वाले को किराया चुका कर अनुषा घर की ओर चल पड़ी। अपनी विचार यात्रा को विराम देने की कोशिश करते हुए घर में घुसी। सास ससुर बाहर के कमरे में ही बेचैन से बैठे थे। अनुषा सीधे किचन की ओर जाने लगी खाने की तैयारी करने के लिए। उसे सुकून मिला जब उसने देखा कि उसकी विवाहित ननद पायल शाम का खाना तैयार करने में लगी है।

–भाभी आप थोड़ी देर आराम कर लो, मैं एक घंटे में खाना तैयार कर दूंगी। आप यहीं खा लेना और भैया का टिफिन ले जाना।

–अरे पायल तुम इतनी तकलीफ... आगे कुछ ना बोल पायी अनुषा। पायल ने अनुषा का मुँह बंद करते हुए उसे कमरे में लाकर बिस्तर पर लिटा दिया।

–मैं अभी गरम गरम कड़क चाय बना कर लाती हुँ तुम्हारे लिए। चाय पीयो और थोड़ी देर आराम करो।

बिस्तर पर लेट गई अनुषा। कुछ ही मिनटों में पायल ने गरमा गरम चाय अनुषा के हाथ में दी चाय पीते हुए अनुषा की नजर सामने

दीवार पर लगी एक बड़े से फोटो पर पड़ी पारिवारिक फोटो पर जिसमें अनुषा हां वह खुद अनुषा 22 साल की नई नवेली दुल्हन के जोड़े में सजी–धजी बैठी थी, साथ में दूल्हा बने बैठे थे 35 से 40 साल के अमर बाबू... उस फोटो में दो चेहरे और थे, उस समय का वरुण 3 साल का और अरुण 7 साल का। देखती रह गई अनुषा उस फोटो को और आज अचानक उसके चेहरे पर एक विवशता पूर्ण हंसी आई। उसने इस फोटो से नजर हटाकर आँखें बंद कर सोना चाहा। उसने आँखें भी बंद की, लेकिन कुछ देर पहले कैंसर हॉस्पिटल का वह दृश्य उसका पीछा नहीं छोड़ रहा था। और अब सामने दीवार पर लगा वह फोटो उसे पिछला समय याद दिला रहा था उसे अपने जीवन के 22वें वर्ष में ले जा रहा था। उसे याद आया वह मनहुस दिन, जब कॉलेज से घर आते ही माँ से चाय की जिद करती अनुषा और चाय पीते पीते घर के सारे लोग यानी उसके मम्मी, पापा, छोटा भाई और खुद अनुषा स्तब्ध रह गए। जब भाई के मोबाइल पर बड़ी बहन के ससुराल से वह हृदय विदारक संदेशा आया कि बड़ी बहन मंजूषा का एक्सीडेंट हो गया था। उसे अस्पताल ले गए थे। स्थिति गंभीर थी और बचने की संभावना नगण्य।

अनुषा के माता पिता, उसका भाई और अनुषा और अन्य तीनों सदस्य एक दूसरे को धीरज बंधाते हुए तत्काल गाड़ी करके चल पड़े थे। रास्ते भर गाड़ी में एक मौन छाया रहा। बहुत प्यार करती थी अनुषा अपनी बड़ी बहन मंजूषा को। मात्र तीन साल का ही तो अंतर था दोनों की उम्र में। सहेली जैसी ही थी दोनों। साथ–साथ कॉलेज जाती थी ? और ऐसा माना जाता है कि अभावों में, दरिद्रता में पलने वाले एक ही परिवार के लोग असुविधाओं के चलते या तो आपस में चिड़ने लगते हैं एक दूसरे से ईर्ष्या करने लगते हैं और एक दूजे से दूर होने लगते हैं या ठीक उलट यह अभाव, यह गरीबी और समस्याओं से संघर्ष उन्हें एक दूसरे के अत्यधिक नजदीक ले आता है। वही कुछ हुआ था इस परिवार में। दोनों बहनें एक प्राण दो शरीर हो गई थी। कॉलेज की पढ़ाई करते–करते अक्सर आने वाली समस्याओं का एक दूसरे के सहारे से निदान करती बड़ी हुई थी। अनुषा सोच भी नहीं पा रही थी। उसे एक एक क्षण भारी लग रहा था। 100 की गति से

चलने वाला वाहन भी उसे धीमा लग रहा था। उसका बस चलता तो वो उड़कर बहन के पास पहुंच जाती, लेकिन उसका बस तो जरा नहीं चला, पर वहाँ अस्पताल में बैठे मंजूषा के सीधे–साधे सज्जन पति और उन दोनों मासूम बच्चों और उनके परिवार के सदस्यों का भी कोई बस नहीं चला। डॉक्टर कुछ नहीं कर पाए और अनुषा के वहाँ पहुंचते पहुंचते मंजूषा उस अज्ञात लोक की यात्रा पर प्रस्थान कर चुकी थी, जिसका अता–पता आज तक कोई मनुष्य नहीं जान पाया।

बहुत रुदन मचा बहुत विलाप हुआ लेकिन जैसा कि धर्म शास्त्रों में लिखा गया है– यदि आपके स्वजन की मृत्यु हो जाती है, आप उसका मातम मनाते हैं तो आप 1000 रातों तक भी लगातार रोते रहोगे तो भी वह वापस नहीं आएगा। सब कुछ सहन करना पड़ा, रोते–बिलखते सांसारिक कार्यों को पूरा करना पड़ा। अंतिम संस्कार के बाद अनुषा के माता पिता और भाई तो वापस घर चले गए। लेकिन अनुषा अपनी बहन के बच्चों की देखभाल के लिए वहीँ रुकी रही। उन बच्चों के लिए जिन्होंने मंजूषा की मृत्यु वाले दिन से जो अनुषा का हाथ पकड़ा तो दिन में रात में सोते में जगते में कभी नहीं छोड़ा और अनुषा ने भी मानो उन दोनों की जिम्मेदारी स्वयं ओढ़ ली।

अमर बाबू खुद इतने दुखी थे, बेहाल थे कि उन्हें खुद का भी होश नहीं था। 11 दिन पूरे होने के बाद घर लौटते समय यह उचित समझा गया कि दोनों बच्चों को कुछ दिन के लिए मौसी के साथ ननिहाल भेज दिया जाए। कुछ सामान्य हो जाए तो मामा वापस ले कर आ जाएगा। ननिहाल में रहते हुए दोनों बच्चे अनुषा में अपनी मम्मी का चेहरा खोजते रहे। हर दिन बड़ी तेजी से गुजरता जा रहा था और बच्चौं की निर्भरता अनुषा पर बढती जा रही थी। और अनुषा... वह भी तो अभिभूत थी इन बच्चों के प्यार में। बल्कि वह एक अघोषित रूप से निर्धारित स्वयं को उन बच्चौं के लिये बना हुआ महसूस करने लगी थी। बच्चों के सोने जागने का खाने–पीने का पूरा ध्यान रखते हुए उन्हें भरपूर लाड लड़ाती रही।

महीना पूरा होते–होते अमर बाबू भी एक दो बार बच्चों से मिलने अपनी ससुराल आए थे। और इस बार बच्चों को ले जाने लगे

उचित भी था कोई कब तक दूसरों के सहारे रह सकता है। सामाजिक नियम है कि सुख हो या दुख सभी को कुछ समय ही पराये घर में आश्रय मिलता है, अंततः खुद के बलबूते पर खुद के सहारे ही रहना पड़ता है लेकिन इस सामाजिकता को अत्यधिक प्यार और स्नेह के मजबूत धागों में बंधे तीन प्राणियों ने मानने से इनकार कर दिया।

अरुण और वरुण वापस लौटने को तैयार नहीं थे और अनुषा भी इस बात पर अड़ी थी कि दोनों बच्चे यहाँ मामा के पास रहकर भी पढ़ाई कर सकते हैं फिर भी बच्चों को समझा–बुझाकर वापस कुछ दिन बाद वापस भेज देने का आश्वासन देकर ले जाया गया। यद्यपि बच्चे अपने पिता के घर में जरा भी चैन से नहीं रह पाये। उन्हें रह–रहकर अपने ननिहाल और अपनी नई माँ मौसीमां अनुषा याद आती रही उन्हें लग रहा था कि उनकी माँ मरी नहीं मौसी के रूप में रूप बदल चुकी है। अनुषा महसूस कर रही थी... बिना शादी के ही एक विचित्र मार्मिक मातृसुख।

मंजूषा कि मृत्यु को छह माह से ज्यादा हो गए थे अमर बाबू जैसे तैसे अपनी दिनचर्या चला रहे थे, और नौकरी कर रहे थे। बच्चे महीने में एक बार तो मामा के यहाँ आ ही जाते थे अमर बाबू के माता पिता बेटे की हालत से परेशान बच्चों के भविष्य से चिंतित यह विचार बनाने लगे थे कि अमर बाबू के लिए कोई रिश्ता खोजा जाए। उन्होंने अनुषा के माता–पिता को भी ये खबर भेजी कुछ सहायता का निवेदन किया कि कहीं से कोई एक रिश्ता मिल जाए। भले ही कोई विधवा हो तो सबका जीवन व्यवस्थित हो जाए। लेकिन कहीं कोई बात नहीं बन पा रही थी। सीधे–साधे अमर बाबू जो 35 की उम्र पार कर रहे थे और बिना पत्नी के अव्यवस्थित जीवन जीते हुए 40 से ज्यादा के लगते थे। दो बच्चे थे, नौकरी सामान्य सी थी... ऐसे में कौन सा रिश्ता उनके घर चल कर आता।

इधर अनुषा के माता–पिता इस चिंता मे थे कि कोइ ऐसी महिला अमर बाबू के घर ना आ जाए जो बच्चों का जीवन दुखी कर दे सौतेले व्यवहार से दोनों बच्चों का बचपन दुश्वार कर दे। समाज में सौतेली माँ के व्यवहार के सच्चे झूठे किस्से फैलते रहते हैं, जो हमारी धारणाओं को और दूषित करने में सहायक होते हैं। यह भी हो

सकता है कि हमारी प्रचलित धारणाओं के कारण ही कोई विवाहित स्त्री स्वयम को सौतेली माँ मानकर यह धारणा ही बना लेती है, क्योंकि वह सौतेली है इसलिए बच्चों से भेदभाव करना कोई नई बात नहीं है। दोनों परिवारोँ के इन परेशान सदस्यों के बीच एक सदस्य और था जिसकी रातों की नींद भी पिछले छह माह में कई कई तरह के सोच विचार मे डुबते हुए अपना चैन खो चुकी थी। वह अनुषा ही थी जो दुखी थी। अरुण और वरुण के लिए परेशान थी। अमर बाबू की अत्यधिक दुखी जीवनचर्या का सुन–सुनकर उदास हो जाती थी। उसे बोध हो रहा था कि यह तीनों पात्र उसकी प्यारी बहन मंजूषा की अमानत है उसकी धरोहर है, और अब क्योंकि मंजूषा नहीं है तो उसकी धरोहर को उसकी अमानत को संभालने की संवारने की सुरक्षित रखने की जवाबदारी उसकी बनती है। अन्य कोई भी स्त्री जो अमर बाबू की पत्नी बन कर आयेगी शायद ही इस परिवार को इस नजरिए से निभा पायेगी। लेकिन वह कैसे इतनी दूर रहकर इन मासूम बच्चों को अत्यंत दुखी और उदास बहनोई को व्यवस्थित रखें। अब वह क्या करें उसने सोचना शुरू किया और इस एक उपाय के सिवा कोई और उपाय उसे नहीं सूझा कि वो अपने जीवन के रंगीन सपनों से समझौता कर ले। क्या जीवन के सुख से ज्यादा अपने कर्तव्य और जवाबदारियाँ नही है ? तो क्या अपनी बहन की अमानतोँ को संभालने के लिए अपने शेष जीवन की कोई ख्वाहिश ना रखें, क्या उसे यह करना चाहिए, क्या वह कर सकेगी, क्या सब लोग उसे करने देंगे! कई–कई वैचारिक उतार–चढ़ाव के बाद अनुषा इस निर्णय पर पहुंच चुकी थी कि जीवन में व्यक्तिगत सुख और महत्वाकाँक्षा ही सर्वोपरि नहीं होती है। कुछ दूसरे ऐसे मामले भी होते हैं जो स्वयम् के सुख से बढ़कर होते हैं और जिनके लिए अपना जीवन भी होम कर दिया जाये तो कुछ गलत नही है। तो मुझे यह करना चाहिए और मैं यह करूंगी। हर रात विचारों में, उसकी आंखों के सामने आ जाता था अमर बाबू का बेहाल चेहरा। क्या रिश्ता था अनुषा का अमर बाबू से और दोनों बच्चों से ? रिश्ता था उसकी बड़ी बहन के पति और बच्चे थे ये। लेकिन क्या केवल इस रिश्ते के लिए कोई अपने जीवन के रंगीन सपनों को सादगीपूर्ण बना सकता है ? सिर्फ

ऐसा भी नहीं था। हाँ अनुषा और अमर बाबू का रिश्ता आदर सम्मान का मानवीय रिश्ता होगा, लेकिन अनुषा और दोनों बच्चों का रिश्ता ? वो ऐसे रिश्तों में आता था जो दैवीय रिश्ते कहे जा सकते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि अनुषा मानवी स्वरूप में वह देवी थी, जिसमें प्यार और ममत्व, करुणा और दया का समुद्र हिलोरे मार रहा था। उसे अपनी बहन के बच्चों से इतना लगाव था कि उसके आगे उसके स्वयम के यौवनावस्था से प्रेरित सपने भी ठंडे पड़ चुके थे। शादी के पहले ही मातृत्व की स्नेहसिक्त भावनाओं से उबर रही थी।

माता–पिता के बीच होने वाली चर्चा ने भी अनुषा को ऐसा निर्णय लेने में प्रेरित किया। रात को आपस में बातें करते मम्मी–पापा अरुण और वरुण की चिंता करते थे। वह इस बात को भी समझती थी कि भविष्य में उसकी शादी होना है उसके खर्च की व्यवस्था भी घर में बराबर नहीं है। वह सुनती रहती थी कि अरुण और वरुण अपने पापा के पास रहते हुए उसे कितना याद करते हैं। इन खबरों ने भी इस निर्णय में एक उत्प्रेरक का काम किया और अनुषा को निर्णायक स्थिति में ला दिया। और अंततः काफी सोच–विचारकर अपने भाई के सामने अनुषा ने अपने मन की भावना जता दी।

जब भाई ने मम्मी पापा को अनुषा की इच्छा बताई तो पहले तो बच्चों के इस भावुक प्रस्ताव का माता–पिता ने विरोध किया। उन्हें जैसी चिंता अरुण और वरुण की थी, उसी प्रकार अनुषा के भविष्य के प्रति भी वे चिंतित थे। इतनी प्यारी बेटी को किसी कमजोर जीवनसाथी को सौंप देना उसके भविष्य के साथ खिलवाड़ करना था. .. और समाज में भी अपनी बदनामी कि कहां तो 35 साल के अमर बाबू और कहां ये नाजुक 22 साल की गुड़िया अनुषा।

अपने विरोध को कुछ दिन तक तो अनुषा के माता पिता ने बनाये रखा, लेकिन फिर कमजोर पड़ते गये। अमर बाबू का कहीं ओर रिश्ता जम नहीं रहा था। मम्मी ने अनुषा से जब खुलकर बात की तो अनुषा ने पूरे तार्किकता से मां को सहमत करवा लिया और इन सब बातों का ही परिणाम था कि अनुषा अमर बाबू जैसे अधेड़ पुरुष की पत्नी और दो बच्चों की माँ बनकर ससुराल आ चुकी थी।

अमर बाबू बहुत खुश थे इस घटनाक्रम से। उन्हें तो लगा था कि ईश्वर का वरदान प्राप्त हो गया है। उस प्रथम रात को अमर बाबू पूरी रात अपने आँसुओं से भरी आँखें लिये अनुषा पर जी भर कर प्यार लुटाते रहे। उस पर निहाल होते रहे। दोनों बच्चे अरुण और वरुण पूरी रात इतने खुश थे कि जरा भी सो नहीं सके। अपनी मां के वापस आ जाने की सुखद अनुभूति लिए अनुषा के आस–पास ही मंडराते रहे .और अनुषा वह भी तो नहीं सो पाई रात भर। कल तक जो अपने परिवार का मात्र एक हिस्सा थी अब उसका स्वयं का संपूर्ण परिवार था। उसके पति और दो बच्चे थे और परिवार की सबसे समर्थ और सक्षम सदस्य वही थी। उसके युवा मन पर रोमांस का सुख उतना रंग नहीं जमा पाया, जितना प्रगाढ़ रंग पत्नी के विरह से दुखी अमर बाबू के समर्पित प्यार और दोनों बच्चों के उसके प्रति उपजे मातृत्व सुख ने जमाया था। और अब चल पड़ी अनुषा अपनी पारिवारिक जवाबदारीयाँ के क्रियान्वयन में। अति व्यस्त रहते हुए समय गुजरता रहा बच्चे बड़े होते गए और अनुष्का का मातृत्व भी प्रौढता की ओर बढ़ने लगा।

अनुषा के त्याग और बच्चों के प्रति अत्यधिक जागरुकता से दोनों बच्चे पढ़ने मैं कुशल आज्ञाकारी और संस्कारित होते गए उन्हें यह साफ स्मरण था कि उनकी परवरिश के लिए उनकी माँ की जगह भरने को मौसी ने कितना बड़ा बलिदान दिया था। अरुण और वरुण के अलावा परिवार वालों की नजर में भी अनुषा सिर्फ घर की पत्नी या बहू नहीं थी, वह कोई देवी थी जो उनका और उनके बच्चों का जीवन सुधारने आकाश से उतरी थी। और परिवार की इस धारणा का एक और बड़ा कारण था। हमारे महाभारत कालीन इतिहास में महामानव भीष्म का उदाहरण है, जिन्होंने अपने पिता की खुशी के लिए आजीवन शादी ना करने का व्रत पालन करने की कसम खाई थी। बहुत विख्यात है यह महान संकल्प दुनिया में। तो उस परिवार में भी यह घटना बहुत ही शांत और मौन रुप से घटित हुई थी।

शादी के तीन साल बाद जब अनुषा के माध्यम से परिवार में किसी नए सदस्य के आने की संभावनाओं पर बात होने लगी तो कुछ तो अनुषा की वैचारिक स्थिति में यह तूफान पैदा हुआ कि यदि उसके

स्वयं के बच्चे हुए तो शायद वह अरुण वरुण पर पूरी ईमानदारी से इतना ध्यान नहीं दे पायेगी। यही बात उसने अमर बाबू की मां और कुछ रिश्तेदारों के मुंह से भी दबे स्वरों में सुनी। अभी तो बहू के खुद का बच्चा नहीं है इसलिए अरुण वरुण पर बहुत ध्यान दे रही है। लेकिन कल को जब उसके खुद के बच्चे हो जाएंगे तब इन बेचारों का क्या होगा ? अनुषा ने स्पष्ट गणित लगाया पति उसके पास है। दो बच्चे हैं जो उसकी बहन के होते हुए भी उसे भी प्राणों से प्यारे है, तब अन्य किसी बच्चे की क्या आवश्यकता है ? और उसने इस निर्णय को पत्थर की लकीर बना लिया और किसी नए सदस्य को आने के अवसर ही अवरुद्ध कर दिये। उसने अपना सारा ध्यान मंजुषा की अमानत को पालने पोषने में उन्हें सुरक्षित रखने मे ही लगा दिया। और परिणाम ये रहा कि देखते ही देखते उसके दोनों बेटे बडे हो चुके थे, जवान होकर समझदार हो चुके थे। दोनों बेटे अनुषा के प्रति इतने समर्पित थे कि इस माँ के लिये दुनिया की कोई भी खुशी लाने के लिये अपनी जान लडा सकते थे। अनुषा की आँख मे अगर एक भी आँसू दिख जाये तो दोनो बेटे विचलित हो जाते थे और जब तक उसका कारण पता ना चल जाये उसका निराकरण ना हो जाये चैन नही लेते थे। अनुषा की तपस्या सफल रही थी। उसे लग रहा था कि उसका जीवन धन्य हो गया है। उसका जीवन का लक्ष्य पुर्ण हो चुका है। लेकिन हम जैसे कि पुर्व मे चर्चा कर चुके हैं कि मनुष्य कितना भी सक्षम हो जाये सफल हो जाये अपने जीवन को व्यवस्थित बना लें, लेकिन अगले क्षण क्या होने वाला है... स्थितियाँ कैसे पलट सकती हैं, इसका पुर्वानुमान कोई भी नही लगा सकता। अर्धनिंद्रित अनुषा विगत की निर्बाध यात्रा मे खोई थी कि अपनी ननद पायल की चीख सुनकर उठ बैठी।

—क्या हुआ दीदी ?

—भाभी जल्दी चलो अस्पताल।

—क्यों क्या हुआ ? एक आशंका सत्य का आकार लेती हुई अनुषा के सामने प्रकट होने लगी थी।

दोनों ननद—भाभी तेजी से सब कुछ छोड्कर भागी। आटो कर अस्पताल पहुंची। लेकिन तब तक वहाँ कुछ भी शेष नही बचा

था। अरुण और वरुण दोनों पिता के मृत शरीर पर दहाडे मार–मारकर रो रहे थे। अस्पताल के कमरे में घुसते–घुसते अनुषा दूर पलंग पर निष्प्राण पडे अमर बाबु के शरीर को एक नजर देखकर दरवाजे पर ही बेहोश होकर गिर पडी। परिवार वाले आ चुके थे, सारे रिश्तेदार आ चुके थे, रुदन की कोई सीमा नहीं थी। सारे कार्य करते हुए अंतिम संस्कार के बाद 10–12 दिन तक के सारे उत्तर कार्य भी निपट गये। मेहमान रिश्तेदार जैसे अचानक प्रकट हुए थे वैसे ही अपनी अपनी जिम्मेदारियाँ निभाते हुए लौट चुके थे। अनुषा के भाई–भाभी भी वापस जा चुके थे। अनुषा के माता–पिता तो कुछ वर्षो पहले ही महाप्रस्थान कर चुके थे। यहाँ घर में भी दोनों बेटो के अलावा सिर्फ सासू ही थी। अनुषा धीरे धीरे संयत होने लगी थी। लेकिन अब वो बिल्कुल रित गई थी, उसे लगता था अब तो उसके पास कोई दायित्व शेष नहीं दिखता। मंजुषा की दी हुई जवाबदारी उसने निभा ही दी थी। अमर बाबु जिसे उसने अपने पति रुप मे हृदय से स्वीकार करते हुए उन्हें पुरे श्रद्धा सम्मान से नवाजा था, वे भी उसे अब मुक्त कर चले थे। दोनों बेटे भी काफी हद तक सक्षम और समझदार हो चुके थे। अब उन्हें अपने पैरो पर खडा होना है। उनकी गृहस्थी बसाना है। बस उसके बाद वो पुरी तरह से मुक्त हो जायेगी। यद्यपि घर का आर्थिक आधार डगमगाने लगा था। आय का कोई निश्चित ठोस स्रोत नजर नही आ रहा था। अमर बाबु शासकीय नौकरी में थे और उनकी मृत्यु के पश्चात उनके वारीस को यानि अरुण को नौकरी मिल सकती थी। इस दिशा में रिश्तेदारों ने प्रयास प्रारम्भ कर दिये थे। अरुण ने पिता के आफिस जाकर सारी प्रक्रिया समझकर आवेदन लाकर अनुषा के और छोटे भाई के दस्तखत करवा लिये थे। अनुषा द्वारा इस सारी प्रक्रिया मे कोई दिलचस्पी नही दिखाई जा रही थी। वो अब एक तटस्थ निष्प्राण सी यंत्रवत जीने लगी थी। अरुण इन सारी स्थितियो को देखकर चिंतित था। वो बैचेन था। इतनी जल्दी माँ का दुनियादारी से विरक्त हो जाना उसे नहीं भा रहा था। उसे विचार आ रहा था कि अब उसका वक्त आया है... माँ को सुख पहुंचाने का, आराम देने का, उसे एक नई उर्जा देने का। उसे भान था कि 35–40 कि उम्र कोई उम्र नहीं होती है, दुनियादारी से विरक्त होने की। वो चाहता था

कि उसकी मौसी जो उसकी माँ से बढकर कर है, फिर से एक शानदार जीवन जीना प्रारम्भ करे और इसके लिये जरूरी था कि अनुषा के मन में एक नये जोश का एक उत्साह का संचार हो। जीवन के प्रति कुछ आकर्षण पैदा हो। जवाबदारी की भावना फिर से जाग्रत हो। और इसका सिर्फ और सिर्फ एक ही तरीका अरुण ने सोचा, तय किया और अपने सोच को अंजाम देने में लग गया।

शनिवार का दिन था। अरुण और वरुण दोनों ने अनुषा के पलंग को घेर लिया– माँ कब तक ऐसे पडी रहोगी ? अब उठो कुछ काम करो।

अनुषा चौंकी– बेटा मैं अब बहुत अशक्त हो चुकी हूँ। अब ना हिम्मत है, ना ताकत है कुछ करने की और कुछ करने को भी तो नही है अब।

–माँ, हम आज ही डाक्टर को दिखाने चल रहे हैं तुम्हें, क्योंकि तुम्हें एक सप्ताह में ठीक होना है।

–क्या मतलब ? अनुषा को कुछ समझ नही आया।

–माँ तुम्हें एक सप्ताह के अंदर एक नई जवाबदारी सम्हालना है।

–अब और क्या नई जवाबदारी ?

–माँ पापा ने जो अधुरा काम छोडा है, उसे अब तुम्हें सम्हालना है।

–उन्होंने क्या अधुरा छोडा ? अनुषा अब भी नहीं समझी।

–माँ पापा की नौकरी अभी 10 साल और बची है, और वो नौकरी तुम्हें करना है। पापा के विभाग ने पापा की जगह तुम्हें अनुकम्पा नियुक्ति दे दी है।

–अरे मुझे क्यों ? तुम हो न तुम्हें मिलेगी नियुक्ति...

–नहीं माँ मैंने तो आवेदन ही नहीं किया है और मैं तो और कोई नई नौकरी खोज लुंगा , लेकिन पापा के स्थान पर आपको जाब करना ही उचित होगा। ये आपका नियुक्ति पत्र आपको एक सप्ताह में ज्वाइन करना है।

–अरे मेरे बेटों! अब ये सब मुझसे नहीं होगा।

–होगा माँ, क्यों नहीं होगा। अभी तुम्हें बहुत कुछ करना है। क्या हमें ऐसे ही मझधार में छोड दोगी ? क्या अपनी बहु से अपने पाँव नहीं दबवाओगी ? क्या कुछ नन्हें–मुन्नों को नहीं खिलाओगी ?

अनुषा चौंकी! मैं तो भूल ही गई थी कि अभी भी बहुत कुछ बाकी है।

–पर मैं अब चुक रही हुँ बेटा! अब कोई उत्साह नहीं है मन में। ऊफ्फ मैं तो समझी थी कि मैं जी चुकी।

–नहीं माँ, तुम अब जीना शुरू करोगी। अभी तक तुमने दूसरो के लिये जीवन जिया है। अब तुम खुद के लिये जियोगी माँ। आपने हमारे लिये पापा के लिये इतना कुछ किया। क्या हमें कुछ भी करने का मौका नही दोगी ? चलो तैयार हो जाओ, डाक्टर को दिखाते हैं। और आठ दिन मे स्वस्थ होकर तुम्हे मॅडम बनकर नौकरी पर जाना है। फिर दो प्यारी–प्यारी दुल्हन लाना है, जो तुम्हारी सेवा करेंगी। फिर तुम्हें 2–4 पोते खिलाना है जो तुम्हारे आशिर्वाद से धन्य होंगे। इतना कुछ बाकी है अभी... और इस बीच तुम्हारा प्रमोशन होकर तुम अफसर बन जाओगी, नौकर–चाकर होंगे, गाडी होगी।. हमारी माँ लकदक गाडी में अफसर बनके घुमेगी।

–अरे बस कर बेटा बस कर.. थोडा तो रुक!

–नहीं माँ हमें मत रोको। आपके उपकार इतने हैं कि हमें कितने ही जीवन लग जायेंगे, तब भी हम तुम्हारे उपकार का एक अंश भी नहीं चुका पायेंगे। हमें कुछ दिन तुम्हारी सेवा कर लेने दो।

–मेरे बेटों, तुमने तो मुझे फिर बांध दिया। मैं समझी थी कि मेरा काम खतम, मेरी जवाबदारी खतम और मेरा जीवन भी खतम! कहते–कहते अनुषा की नजरें सामने दिवार पर टंगी मंजुषा की बड़ी सी तस्वीर पर पड़ी। मंजुषा मुस्करा रही थी, मानो कह रही हो– मेरी बहना तूने बहुत दुख उठाया है। अब तेरे बेटों से कुछ सुख तो ले ले, ताकि मे भी संतुष्ट हो जाऊं... मुझे लगे कि तेरा बलिदान व्यर्थ नही गया।

कुछ ही क्षणों बाद तीनों माँ–बेटे अस्पताल की और जा रहे थे। जीवन वापस दिलचस्प होने जा रहा था।

कहानी

डॉ. रंजना जायसवाल
लाल बाग कॉलोनी, छोटी बसही
मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश 231001

वजूद

सुधा के एम. ए. करते ही घर में जोर–शोर से शादी की बातें चलने लगी। पापा अखबारों और पत्रिकाओं में सर डाले बैठे रहते और अपनी लाडो के लिए योग्य वर की तलाश करते रहते। कागजों के छोटे–छोटे टुकड़े पर योग्य वर...सुधा को न जाने क्यों कभी–कभी ऐसा लगता वो लड़कों का बायोडाटा नहीं एक लॉटरी है लगी तो ठीक वरना...। सुधा एक अजीब सा जीवन जी रही थी,हर दूसरे–तीसरे महीने घर की साफ–सफाई शुरू हो जाती। चादरें बदली जाने लगती,सोफे के नीचे झाड़ू डाल–डाल कर सफाई होने लगती, सुधा माँ की इस हरकत पर मन ही मन मुस्कुरा देती। लड़के वाले उसे देखने आ रहे या फिर

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

उसके घर को...पर माँ का यह भगीरथ प्रयास भी न जाने क्यों विफल हो जाता। सुधा देखने–सुनने में ठीक–ठाक थी पर न जाने क्यों लड़के वाले उसे हर बार मना कर देते।

लड़के वालों की मनाही कहीं न कहीं पूरे परिवार को तोड़ देती, कई दिनों तक घर मे एक अजीब सी नीरवता छा जाती। सब एक–दूसरे से नजरें चुराते रहते,सुधा एक अजीब सी आत्मग्लानि से भर जाती। लड़के वालों के आने से पहले होने वाले तामझाम के पीछे छिपे अनावश्यक खर्चों से वो कशमशा कर रह जाती। पापा लड़के वालों को लुभाने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ते पर फिर भी...एक अजीब सा अपराधबोध सुधा को लगातार घेर रहा था। लड़के वालों की लगातार मनाही से वो अंदर ही अंदर टूट रही थी। एक दिन माँ भैया पर बुरी तरह चिल्ला पड़ी थी– 'कितनी बार कहा कि सुधा की फोटो किसी कायदे के स्टूडियो में खिचवाओं, पर मेरी सुनता कौन है।'

'माँ! तुम भी ना... फोटो का क्या है! मैंने तो उससे कहा भी था कि एक शेड गोरी करके प्रिंट निकालना... पर पता नहीं इन लड़कों वालो का कुछ समझ नहीं आता। आखिर उनको बहू लानी है कि हीरोइन।'

माँ न जाने क्यों अचानक से वहमी होती जा रही थी– 'सुधा के पापा.. अबकी लड़के वाले आये तो उन्हें काजू वाली नहीं पिस्ते वाली मिठाई परोसेंगे। शुक्लाइन कह रही थी शुभ काम में सफेद नहीं रंगीन मिठाई खाई और खिलाई जाती है।हो सकता है लाडो की शादी इसी वजह से न हो पा रही हो।'

सुधा की साड़ियों का रंग भी हर लड़के वाले कि मनाही के साथ बदलता जा रहा था, शायद ???

नवीन और उसका परिवार पिछले महीने ही देख कर गया था, नवीन के परिवार ने सुधा को देखते ही पसन्द कर लिया। माँ के पैर तो जमीन पर ही नहीं पड़ रहे थे। सुधा ने भी कही न कही राहत की सांस ली,इस रोज –रोज के दिखावे से वो भी तंग आ चुकी थी। दो साल का वनवास आज खत्म हो गया था, वो खुश थी शायद इसलिए.. क्योंकि घर मे सब खुश थे। आज तक वो उनकी खुशी में

ही तो खुश होती आई थी। खुद की खुशी क्या है... वो कब का भूल चुकी थी।

पापा और मम्मी नवीन के परिवार से आगे की बात करने के लिए कल सुबह ही निकल गए थे, रात में पापा के फोन आने के बाद घर में एक अजीब सा भूचाल मचा हुआ था। सुधा पूरी रात सो नहीं पाई थी। भैया सुबह–सवेरे ही उसके कमरे में चले आये थे, वो उसे काफी देर तक समझाते रहे। सुधा विचारों के भंवर में डूब उतरा रही थी। भैया बिस्तर से उठ खड़े हुए– 'सुधा सोच लो, कोई दबाव नहीं है। पापा–मम्मी ने मुझ पर ये जिम्मेदारी छोड़ रखी है।क ोई तुम्हारा बुरा नहीं चाहता, तुम जो फैसला लोगी वो सबको मंजूर होगा।'

भैया ने हाथ बढ़ाकर कमरे के पर्दे को हटाया और कमरे से बाहर निकल ही रहे थे कि सुधा ने पीछे से आवाज लगाई– 'भैया!'

'क्या हुआ... कुछ कहना चाहती हो... बोलो, मैं सुन रहा हूँ।'

भैया चुपचाप बिस्तर पर आकर बैठ गए, सुधा के चेहरे पर एक अजीब सी बेचैनी थी। वो समझ नहीं पा रही थी कि बात कहाँ से शुरू करें।

'भैया!!...आप बुरा न माने तो एक बात पूछूँ..!'

'बोल न ..मैं सुन रहा हूँ।' भैया ने बड़े प्यार से सुधा के सर पर हाथ फेरा।

'भैया! ..अगर ऐसा ही रिश्ता आपके लिए आया होता तो क्या आप...आप तैयार होते, आप शादी के लिए हाँ कर देते।' शायद ये बात कहने के लिए सुधा को बहुत हिम्मत जुटानी पड़ी थी, उसके चेहरे पर न जाने कितने रंग आये और गए। उसकी सांसे फूल रही थी,जैसे वो न जाने कितने मीलों का सफर तय करके आयी थी। सच ही तो था, वो आज तक एक सफर में ही थी। एक ऐसा सफर जिसकी मंजिल की डोर हमेशा दूसरे के हाथों में थी। आज पहली बार उससे उसका फैसला पूछा गया था। फैसला! अपनी जिंदगी का फैसला ...आज तक वो सिर्फ दूसरे के फैसले सुनती आई थी और मानती भी आई थी।

शिकायत नहीं थी उसे किसी से.. होती भी तो किससे... फैसले लेने वाले लोग भी अपने ही तो थे, पर आज तक उसके जिंदगी के फैसले दूसरों ने ही लिए थे। किस साइड से उसे पढ़ना है, कौन से विषय उसे लेने चाहिए, कॉलेज जाने के लिए इस रंग का सूट नहीं.

.. बिल्कुल भी नहीं, पढ़ने जा रहे हैं कोई बाजार–हाट घूमने नहीं। कॉलेज से इतने बजे तक आ जाना...उफ्फ। सुधा ने अपने कान बन्द कर लिए...चारों तरफ विचारों का एक अजीब–सा कोलाहल था, पर भीतर एक गहरा सन्नाटा पसरा हुआ था। माथे पर पसीने की चंद बूंदे चुहचुहा गई।

'बोलिये न भैया!...क्या आपने ऐसे रिश्ते के लिए हाँ कही होती।'

'नहीं... बिल्कुल भी नहीं!'

सुधा भैया के चेहरे पर अपने सवालों के जवाब ढूंढ़ती रही, भैया के इस एक शब्द से उसकी दुनिया हिल गई।

'क्यों..?'

'मेरे पास इतने सारे विकल्प हैं तो मैं क्यों ऐसी लड़की को पसन्द करूंगा। मुझे एक से एक लड़कियाँ मिल जाएगी। पढ़ा–लिखा हूँ, अच्छा–खासा कमाता हूँ, मुझे लड़कियों की कौन सी कमी... जो मैं ऐसी लड़की से शादी करूँ।'

सुधा आश्चर्य से भैया का मुँह देखती रह गई। भैया अपनी ही दुनिया में मस्त थे। पुरुष होने का दंभ अचानक से उनके चेहरे पर दिखने लगा था, पढ़ी–लिखी तो वो भी थी। शायद परिवार का प्रोत्साहन मिल जाता तो नौकरी भी कही न कही मिल ही जाती पर. ..

'हमारी जाति में ज्यादा पढ़ाया नहीं जाता। इतना पढ़ा–लिखा लड़का कहाँ से लाएंगे, वैसे भी सम्भालनी तो गृहस्थी ही है, फालतू में समय और पैसा क्यों बर्बाद करना।' कितनी आसानी से कह दिया था माँ ने, कितना लड़ी थी उस दिन वो माँ से...

'अपनी जाति में लड़के न पढ़ें इसलिए मैं भी न पढ़ूँ.... ये कहाँ का न्याय है। मेरे सपनों को क्यों कुचल रही हो माँ..'

न जाने क्या सोचकर सुधा की आँखें भीग गई, पर भैया न जाने किस दुनिया मे खोए हुए थे।

'सुधा!...गनीमत है लड़के वालों ने कुछ छिपाया नहीं, ये तो उनकी शराफत है। वो चाहते तो छुपा भी सकते थे। भगवान का शुक्र है, हमें शादी से पहले ही पता चल गया।'

'ऐसे कैसे छुपा लेते भैया... शादी–ब्याह का मामला है। दो परिवारों के विश्वास की बात है। उन्हें लगा होगा किसी तीसरे से पता चले, उससे अच्छा है कि खुद ही बता दें।'

'तू कितनी भोली है, अभी तूने दुनिया देखी ही कहाँ है..'

'भैया!...उन्हें भी डर था कि अब गोद भराई तक बात पहुँच गई है, अब नहीं बताया तो सब गड़बड़ हो जाएगा पर गड़बड़ तो हो गई ना!'

'गड़बड़ कैसी ?'

'इतना बड़ा सच उन्होंने हमसे छुपाया और आप कह रहे हैं!'

'दिक्कत क्या है सुधा... इंजीनियर है... इकलौता है.. शहर के बीचों–बीच दो मंजिला मकान है। पूरा परिवार तुम्हें हाथों–हाथ लिए रहेगा और क्या चाहिए तुम्हें...?'

'भैया! उसके पैर में रॉड पड़ी है। कल...!!'

'सुधा!..वो एक दुर्घटना थी। हड्डी टूट गई, डॉक्टर ने रॉड डाल दी। तुमने भी देखा है नवीन को चलने–फिरने में कोई दिक्कत नहीं है।'

'पर कल..!'

'कल क्या... उन्होंने बताया कि रॉड जिंदगी भर भी पड़ी रहे तो भी कोई दिक्कत नहीं और निकाल ले तो भी...'

'पर..!!'

'पर–वर कुछ नहीं।'

सुधा की आशंका गहराती जा रही थी, सुधा के पास इस रिश्ते से इंकार करने का सारे तर्क भैया ने ध्वस्त कर दिए थे। एक तरफ सबने फैसले लेने के सारे अधिकार भी उसके नाम से सुरक्षित कर दिए थे और दूसरी तर्क पर तर्क दे उसकी शंका, उसके सवालों को ध्वस्त करते जा रहे थे। न जाने क्यो... उसे ऐसा लग रहा था मानो वो कोई विज्ञापन देख रही हो, जहाँ सामान की कोई गारन्टी नहीं लेना चाहता और उद्घोषक वैधानिक चेतावनी के नाम पर नियम–कानून इतनी तेजी से बोलता है कि आप सुनकर भी सुन नहीं पाते।

'सुधा!..एक बात कहूँ, पति अपने से कुछ कमतर हो तो जीवनभर एहसान तले दबे रहता है। परिवार तुम्हे देवी की तरह पूजेगा और समाज की नजरों में तुम हमेशा महान बनी रहोगी। जानती

हो नवीन की मम्मी बता रही थी कि नवीन ने अपना सर्टिफिकेट भी बनवा रखा है, ट्रेन में उसका टिकट मुफ्त हो जाता है और साथ चलने वाला का आधा... मौज ही मौज रहेगी तुम्हारी।'

सुधा आश्चर्य से भैया को देख रही थी। नवीन अपने परिस्थितियों के आगे अपाहिज थे, लाचार थे... ईश्वर ने उनके साथ अच्छा नहीं किया... पर क्या ये समाज भी मानसिक रूप से अपाहिज नहीं है। महान बनने का इससे अच्छा शॉर्टकट कोई हो ही नहीं सकता था, कहीं न कहीं इस रिश्ते के लिए पापा–मम्मी और भैया का मन भी गवाही नहीं दे रहा था, जिंदगी भर उसके हर छोटे–बड़े फैसले आज तक वो ही लोग ले रहे थे पर आज...। कही न कही भैया ने अपनी बातों से ये जता भी दिया था कि लड़कियों का क्या है उनके लिए कुछ भी चलता है, पर क्या सच में... कल समाज को जवाब देते–देते वो थक जाएगी। कमी उसमें नहीं नवीन में थी, पर उंगलियाँ हमेशा उस पर उठेंगी, जरूर कोई बात होगी जो घरवालों ने ऐसे लड़के से शादी कर दी। महान बनने का इससे अच्छा मौका उसे नहीं मिलेगा, पर क्या वो सचमुच अपने पति को बेचारे की तरह उम्र भर चाहना चाहती है ...आज पहली बार किसी ने उससे उसकी राय, उसका फैसला पूछा है, एकबारगी उसे नवीन पर दया भी आती थी पर कहीं न कहीं वो भी तो समाज के मानसिक विकलांगता की शिकार थी। सुधा फैसला कर चुकी थी, इस फैसले का जो भी परिणाम हो... पर अब वो समाज की खोखली विकलांगता का शिकार नहीं हो सकती। सभी को अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी, चाहे सामने कोई भी हो।

'भैया! मैं माफी चाहती हूँ, मैं ये शादी नहीं कर सकती। मम्मी–पापा को बता दीजियेगा... लड़के वालों को मनाकर दें।'

भैया हक्के–बक्के से सुधा को देख रहे थे, शायद उन्हें सुधा से इस बात की उम्मीद नहीं थी। शायद वो भी ये मानकर चले थे कि लड़कियों के लिए कुछ भी चलता है पर नहीं बस अब और नहीं। किसी न किसी को तो कदम तो बढ़ाना ही होगा.. सुधा का चेहरा आत्मविश्वास से चमक रहा था। सुधा के एक फैसले ने जता दिया कि लड़कियों के लिए कुछ भी नहीं चलता। सुधा सोच रही थी कि सही मायने में विकलांग कौन था नवीन या फिर समाज...?

लघुकथा

महेश कुमार केशरी
मेघदूत मार्केट, फुसरो, बोकारो (झारखंड) 829144
keshrimahesh322@gmail.com

रजनीगंधा मुरझा गए...

'पापा लाईट नहीं है, मेरी ऑनलाइन क्लासेज कैसे होंगी... ?? कुछ दिनों में मेरे सेकेंड टर्म के एग्जाम शुरू होने वाले हैं.. कुछ दिनों तक तो मैनें अपनी दोस्त नेहा के घर जाकर पावर बैंक चार्ज करके काम चलाया.. लेकिन अब रोज–रोज किसी से पावर बैंक चार्ज करने के लिए कहना अच्छा नहीं लगता.. आखिर, कब आयेगी हमारे घर बिजली ?' संध्या अपने पिता आदित्य से बड़बड़ाते हुए बोली।

'आ जायेगी बेटा, बहुत जल्दी आ जायेगी!' आदित्य जैसे अपने आपको आश्वस्त करते हुए अपनी बेटी संध्या से बोला। लेकिन, वो जानता है कि वो संध्या को केवल दिलासा भर दे रहा है। सच तो ये है कि अब मखदूमपुर में बिजली कभी नहीं आयेगी। सुप्रीम कोर्ट के आदेश पर ही बिजली विभाग ने यहाँ के घरों की बिजली काट रखी है। पानी की पाइपलाइन खोदकर धीरे–धीरे हटा दी जायेगी... और धीरे–धीरे मखदूमपुर से तमाम मौलक नागरिक सुविधाएँ स्वतः ही खत्म हो जायेंगी। ....और, सर से छत छिन जायेगी..! फिर वह, सुलेखा, संध्या, सुषमा और परी को लेकर कहाँ जायेगा ? बहुत मुश्किल से वह अपने एल. आई. सी. के फंड़ और अपने पिता श्री बद्रीप्रसाद जी के रिटायरमेंट से मिले पंद्रह–बीस लाख रूपये से एक अपार्टमेंट खरीद पाया था। तिनका–तिनका जोड़कर जैसे गौरैया अपना घर बनाती है.!!.सोचा था कि, अपनी बच्चियों की शादी करने के बाद वो आराम से अपनी पत्नी सुलेखा के साथ रहेगा.. बुढ़ापे के दिन आराम से अपनी छत के नीचे काटेगा... लेकिन, अब ऐसा नहीं

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

हो सकेगा, उसे ये घर खाली करना होगा ..नहीं तो.. नगर निगम वाले आकर जे. सी बी. से तोड़ देंगे!

वह दिल्ली से सटे फरीदाबाद के पास मखदूमपुर गाँव में रहता है। पिछले बीस–बाईस सालों से मखदूमपुर में तीन कमरों के अपार्टमेंट में वो रह रहा है। बिल्ड़र संतोष तिवारी ने घर बेचते वक्त ये बात साफ तौर पर नहीं बताई थी– ये जमीन अधिकृत नहीं है... यानी वो निशावली के जंगलों के बीच जंगलों और पहाड़ों को काटकर बनाया गया एक छोटा सा कस्बा जैसा था जहाँ आदित्य रहता आ रहा था। हालांकि, वह अपार्टमेंट लेते वक्त उसके पिता श्री बद्री प्रसाद और उसकी पत्नी सुलेखा ने मना भी किया था– 'मुझे तो ड़र लग रहा है। कहीं.. ये जो तुम्हारा फैसला है, वो कहीं हमारे लिए बाद में सिरदर्द ना बन जाये।'

तब उसी क्षेत्र के एक नामी–गिरामी नेता रंकुल नारायण ने सुलेखा, आदित्य और बद्री प्रसाद को आश्वस्त भी किया था– 'अरे, कुछ नहीं होगा। आप लोग आँख मूंदकर लीजिए यहाँ अपार्टमेंट... मैंने खुद अपने रिश्तेदारों और दोस्तों को दिलाया है यहाँ अपार्टमेंट... मैं पिछले पंद्रह–बीस सालों से यहाँ विधायक हूँ। चिंता करने की कोई बात नहीं है।' रंकुल नारायण का बहनोई था बिल्ड़र संतोष तिवारी। ये बात अगले आने वाले विधानसभा चुनाव में पता चली थी, जब अनाधिकृत कॉलोनी के टूटने की बात आदित्य को पता चली! रंकुल नारायण ने उस साल के विधानसभा चुनाव में, सारे लोगों को आश्वासन दिया था कि 'आप लोगों को घबराने की कोई जरूरत नहीं है। आप लोग... मुझे इस विधानसभा चुनाव में जीतवा दीजिये.. फिर मैं असेंबली में मखदूमपुर की बात उठाता हूँ, कि नहीं.. आप खुद ही देखियेगा..! कोई नहीं खाली करवा सकता, ये मखदूमपुर का इलाका. .. हमने आपके राशन कार्ड बनवाये... हमने आपके घरों में बिजली के मीटर लगवाये...यहाँ कुछ नहीं था... जंगल था जंगल! लेकिन हमने जंगलों को कटवाकर पाईपलाइन बिछाया। आप लोगों के घरों तक पानी पहँचाया... ये कोई बहुत बड़ी बात नहीं है.. अनाधिकृत को अधिकृ त करवाना! असेंबली में चर्चा की जायेगी... और कुछ उपाय कर लिया जायेगा। इस मखदूमपुर वाले प्रोजेक्ट में मेरे बहनोई का कई सौ करोड़ रुपया लगा हुआ है। इसे हम किसी भी कीमत पर अधिकृत करवा कर ही रहेंगे। और अंततः रंकुल नारायण की बातों पर लोगों

ने विश्वास कर उसे भारी मतों से जीतवा दिया था। और रंकुल नारायण के विधानसभा चुनाव जीतने के साल भर बाद ही सुप्रीम कोर्ट का ये आदेश आया था कि मखदूम पुर कस्बा बसने से निशावली के प्राकृतिक सौंदर्य और पर्यावरण को बहुत ही नुकसान हो रहा है... लिहाज.. जो अनाधिकृत कस्बा मखदूमपुर बसाया गया है, उसे अविलंब तोड़ा जाये.. और डेढ़–दो महीने का वक्त खुले में रखे कपूर की तरह धीरे–धीरे उड़ रहा था।

'पापा... ना हो तो आप मुझे मेरी दोस्त सुनैना के घर छोड़ आईये.. वहाँ मेरी पावरबैंक भी चार्ज हो जायेगी और मैं सुनैना से मिल भी लूंगी। मुझे कुछ.. नोटस भी उससे लेने हैं।'

आदित्य को भी ये बात बहुत अच्छी लगी। सुनैना के घर जाने वाली... बच्ची का मन लग जायेगा.कोविड़ में घर में रहते–रहते बोर हो गई है। आदित्य ने स्कूटी निकाली और गाड़ी स्टार्ट करते हुए बोला– 'आओ बेटी, बैठो!'

थोड़ी देर में स्कूटी सड़क पर दौड़ रही थी। संध्या को सुनैना के घर छोड़कर कुछ जरुरी काम को निपटाकर वो राशन का सामान पहुँचाने घर आते ही पार्श्व जीवन में चला गया।

'मैं क्या करूं सुलेखा... तीन–तीन जवान बच्चियों को लेकर कहाँ किराये के मकान में मारा–मारा फिरूँगा। ...और अब उम्र भी ढलान पर होने को आ रही है... आखि, बुढ़ापे में कहीं तो सिर टिकाने के लिए ठौर चाहिए ही। कुछ मेरे एल.आई.सी. के फंड हैं, कुछ बाबूजी के रिटायरमेन्ट का पैसा पड़ा हुआ है, जोड़–जाड़कर कुछ पंद्रह–बीस लाख रुपये तो हो ही जाएँगे, कुछ संतोष तिवारी से नेगोशियेट (मोल– भाव) भी कर लेंगे..' और तब आदित्य ने बीस लाख में वो तीन कमरों वाला.. अपार्टमेंट खरीद लिया था. बिल्ड़र संतोष तिवारी से।

तब सुलेखा ने आदित्य को मना करते हुए कहा था– 'पता नहीं क्यों ये संतोष तिवारी और रंकुल नारायण मुझे ठीक आदमी नहीं जान पड़ते। इन पर विश्वास करने का दिल नहीं करता है।' लेकिन, आदित्य बहुत ही सीधा–सादा आदमी था। वह किसी पर भी सहज ही विश्वास कर लेता।

तभी उसकी नजर अपनी पत्नी सुलेखा पर गई, शायद आठवाँ महीना लगने को हो आया है। पेट कितना निकल गया है। उसने

देखा सुलेखा नजदीक के चापाकल से मटके में एक मटका पानी सिर पर लिये चली आ रही है। साथ में उसकी दो छोटी बेटियाँ, परी और सुषमा भी थीं, वो अपने से ना उठ पाने वाले वजन से ज्यादा पानी दो–दो बाल्टियों में भरकर नल से लेकर आ रही थीं। आदित्य ने देखा तो दौड़कर बाहर निकल आया और, सुलेखा के सिर से मटका उतारते हुए बोला– 'पानी नहीं आ रहा है क्या ?'

उसका ध्यान बिजली पर चला गया। बिजली तो कटी हुई है, आखिर पानी चढ़ेगा तो कैसे ? मोटर तो बिजली से चलती है ना!

'नहीं, पानी कैसे आयेगा ? बिजली कहाँ है... एक बात कहूँ, बुरा तो नहीं मानोगे ना! ना हो तो मुझे मेरे पापा के घर कुछ दिनों के लिए पहुँचा दो। जब यहाँ कुछ व्यवस्था हो जायेगी तो यहाँ वापस बुला लेना! बच्चा भी ठीक से हो जायेगा और मुझे थोड़ा आराम भी मिलेगा। यहाँ इस हालत में मुझे बहुत तकलीफ हो रही है। पानी भी नहीं आ रहा है, बिजली भी नहीं आ रही है...!' सुलेखा चेहरे का पसीना पल्लू से पोंछते हुए बोली।

अभी तक सुलेखा और बेटियों को 'घर टूटने वाला है', ये बात जानबूझकर, आदित्य ने नहीं बताई है। खामखा वो परेशान हो जायेंगी!

'हाँ पापा घर में बहुत गर्मी लगती है, पता नहीं बिजली कब आयेगी... हमें नानू के घर पहुँचा दो ना पापा!' परी बोली।

'हाँ बेटा, कोविड़ कुछ कम हो तो तुम लोगों को नानू के घर पहुँचा दूंगा।' आदित्य परी के सिर पर हाथ फेरते हुए बोला।

'तुम हाथ–मुँह धो लो, मैं चाय गर्म करती हूँ।' सुलेखा गैस पर चाय चढ़ाते हुए बोली।

चाय पीकर वह टहलते हुए नीचे बॉलकनी में आ गया। कॉलोनी में कॉलोनी को खाली करवाने की बात को लेकर ही चर्चा चल रही थी।

कुलविंदर सिंह बोले– 'यहीं वारे (महाराष्ट्र) के जंगलों को काटकर वहाँ मेट्रो बनाया गया। वहाँ सरकार कुछ नहीं कह रही है, लेकिन हमारी कॉलोनी इन्हें अनाधिकृत लग रही है। सब सरकार के चोंचले हैं, मेट्रो से कमाई है, तो वहाँ वो पर्यावरण संरक्षण की बात नहीं करेगी.. लेकिन हमारे यहाँ निशावली के जंगलों और पर्यावरण को नुकसान पहुँच रहा है। हुँह.. पता नहीं कैसा सौंदर्यीकरण कर रही

है सरकार! फिर ये हमारा राशन कार्ड, वोटर कार्ड, आधार कार्ड किसलिए बनाये गये हैं... केवल, वोट लेने के लिए! जब कोई बस्ती–कॉलोनी बस रही होती है, बिल्ड़र उसे लोगों को बेच रहा होता है.. तब सरकारों की नजर इस पर क्यों नहीं जाती ? हम अपनी सालों की मेहनत से बचाई पाई–पाई जोड़कर रखते हैं, अपने बाल–बच्चों के लिए.. और, कोई कारपोरेट या बिल्ड़र हमें ठगकर लेकर चला जाता है... तब, सरकार की नींद खुलती है... हमें सरकार कोई दूसरा घर कहीं और व्यवस्था करके दे, नहीं तो हम यहाँ से हटने वाले नहीं हैं...!'

घोष बाबू सिगरेट की राख चुटकी से झाड़ते हुए बोले– 'अरे. . छोड़िये कुलविंदर सिंह! ये सारी चीजें सरकार और, इन पूंजीपतियों के साँठगाँठ से ही होती हैं। अगर अभी जाँच करवा ली जाये तो आप देखेंगे कि हमारे कई मिनिस्टर, एम.पी., एम.एल.ए. इनके रिश्तेदार इस फर्जीवाड़े में पकड़े जायेंगे। सरकार की नाक के नीचे इतना बड़ा कांड़ होता है, करोड़ों के कमीशन बंट जाते हैं, और आप कहते हैं कि सरकार को कुछ पता नहीं होता... हैं... कोई मानेगा इस बात को! सब सेटिंग से होता है। नहीं तो इस देश में एक आदमी फुटपाथ पर भीख माँगता है, और दूसरा आदमी केवल तिकड़म भिड़ाकर ऐश करता है. .. ये आखिर, कैसे होता है... ? सब जगह सेटिंग काम करती है...!'

उसका नीचे बॉलकनी में मन नहीं लगा। वह वापस अपने कमरे में आ गया और बिस्तर पर आकर पीठ सीधी करने लगा।

'तुमसे मैं कई बार कह चुकी हूँ, लेकिन तुम मेरी कोई भी बात मानों तब ना... अगर, होटल लाईन नहीं खुल रही है तो कोई और काम–धाम शुरू करो! समय से आदमी को सीख लेनी चाहिए... कोरोना का दो महीना बीतने को हो आया और सरकार,होटलों को खोलने के बारे में कोई विचार नहीं कर रही है। आखिर और लोग भी अपना बिजनेस चेंज कर रहे हैं, लेकिन पता नहीं तुम क्यों इस होटल से चिपके हुए हो ?'

कौन समझाये सुलेखा को, बिजनेस चेंज करना इतना आसान नहीं होता है... एक बिजनेस को सेट करने में कई पीढ़ियाँ निकल जाती हैं। फिर उसके दादा परदादा ये काम कई पीढ़ियों से करते आ रहे थे। इधर नया बिजनेस शुरू करने के लिए नई पूँजी चाहिए, कहाँ से लेकर आयेगा वो अब नई पूँजी ? इधर होटल पर बिजली का

बकाया बिल बहुत चढ़ गया है। स्टाफ का दो–तीन महीने का पुराना बकाया चढ़ा हुआ था ही... रही–सही कसर इस कोरोना ने निकाल दी। कुल चार–पाँच महीनों का बकाया चढ़ गया होगा अब तक...। दूकान खोलते–खोलते दूकान का मालिक सिर पर सवार हो जायेगा– दूकान के भाड़े के लिए...। दूध वाले, राशन वाले को भी लॉकड़ाउन खुलते ही पैसे देने होगे... पिछले बीस–बाईस सालों का संबंध है उनका, इसलिए वे कुछ कह नहीं पा रहे हैं। आखिर वह करे तो क्या करे ? पिछले लॉकड़ाउन में भी.. जब संध्या और सुषमा के स्कूलवालों ने कैम्पस केयर (एजुकेशन ऐप) को लॉक कर दिया था, तो मजबूरन उसे जाकर स्कूल की फीस भरनी पड़ी थी। आखिर स्कूल वाले भी करें तो क्या करें...? उनके भी अपने खर्चे हैं! बिल्ड़िंग का भाड़ा, स्टाफ का खर्चा और स्कूल के मेंटेनेंस का खर्चा, कोई भी हवा पीकर थोड़ी ही जी सकता है! आखिर कहाँ गलती हुई... उससे, वह इस देश का नागरिक है, उसे वोट देने का अधिकार है, वह सरकार को टैक्स भी देता है... सारी चीजें उसके पास थीं.. पैन कार्ड, राशन कार्ड, वोटर कार्ड, आधार कार्ड। लेकिन जिस घर में वह इधर बीस–बाईस सालों से रहता आ रहा था, वह घर ही अब उसका नहीं था। घर भी उसने पैसे देकर ही खरीदा था। उसे ये उसकी कहानी नहीं लगती, बल्कि उसके जैसे दस हजार लोगों की कहानी लगती है! मखदूमपुर दस हजार की आबादी वाला कस्बा था। ऐसा शायद दुनिया के सभी देशों में होता है... नकली पासपोर्ट, नकली वीजा... वैध–अवैध नागरिकता... सभी जगह इस तरह के दस्तावेज, पैसे के बल पर बन जाते हैं। सारे देशों में सारे मिडिल क्लास लोगों की एक जैसी परेशानी है, ये केवल उसकी समस्या नहीं है, बल्कि उसके जैसे सैंकड़ों–लाखों करोड़ों लोगों की समस्या है। बस... मुल्क और सियासत दाँ बदल जाते हैं, स्थितियाँ कमोबेश एक जैसी ही होती हैं... सबकी एक जैसी लड़ाईयाँ! बस लड़ने वाले लोग अलग–अलग होते हैं.... जमीन–जमीन का फर्क है, लेकिन सारे जगहों पर हालात एक जैसे ही हैं। आदित्य का सिर भारी होने लगा और पता नहीं कब वह नींद की आगोश में चला गया।

वह सुलेखा और अपनी तीनों बेटियों को अपने ससुर के यहाँ लखनऊ पहुँचा आया था। और बहुत धीरे से इन हालातों के बारे में उसने सुलेखा को बताया था।

'अरे बाबूजी, अब ये रजनीगंधा के पौधे को छोड़ भी दीजिये। देखते नहीं पत्तियों कैसी मुरझा कर टेढ़ी हो गईं हैं। अब नहीं लगेगा रजनीगंधा... लगता है इसकी जड़ें सूख गई हैं। बाजार जाकर नया रजनीगंधा लेते आइयेगा मैं लगा दूंगा।' माली ने आकर जब आवाज लगाई, तब जाकर आदित्य की तंद्रा टूटी– 'ऊं... क्या चाचा... आप कुछ कह रहे थे!' आदित्य ने रजनीगंधा के ऊपर से नजर हटाई।

बीस–पच्चीस दिन हो गये हैं उसे नये किराये के मकान में आये। अगल–बगल से एक लगाव जैसा भी अब हो गया है। शिवचरन, माली चाचा भी कभी–कभी उसके घर आ जाते हैं। इधर–उधर की बातें करने लगते हैं तो समय का जैसे पता ही नहीं चलता। मखदूमपुर से लौटते हुए वह अपने अपार्टमेंट में से ये रजनीगंधा का पौधा कपड़े में लपेटकर अपने साथ लेते आया था। आखिर कोई तो निशानी उस अपार्टमेंट की होनी चाहिए, जहाँ इतने साल निकाल दिए।

'मैं कह रहा था कि बाजार से एक नया रजनीगंधा का पौधा लेते आना। लगता है इसकी जड़ें सूख गईं हैं! नहीं तो पत्ते में हरियाली जरूर फूटती... देखते नहीं कैसे मुरझा गयी हैं पत्तियाँ! कुंभलाकर पीली पड़ गईं हैं!. लगता है इनकी जड़ें सूख गई हैं... बेकार में तुम इन्हें पानी दे रहे हो!'

'हाँ चचा, पीला तो मैं भी पड़ गया हूँ। जड़ों से कटने के बाद आदमी भी सूख जाता है... अपनी जड़ों से कट जाने के बाद आदमी का भी कहीं कोई वजूद बचता है क्या..? बिना मकसद की जिंदगी हो जाती है..., पानी इसलिए दे रहा हूँ... कि कहीं ये फिर से हरी–भरी हो जाएं...! एक उम्मीद है अभी भी, जिंदा है..... कहीं भीतर..!!'

आदित्य वहीं रजनीगन्धा के पास बैठकर फूट–फूट कर रोने लगा। बहुत दिनों से जब्त की हुई नदी अचानक से भरभराकर टूट गई थी। शिवचरन चाचा उजबकों की तरह आदित्य को घूरे जा रहे थे, उनको कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

***

फार्म – 4

स्माचार–पत्र पंजीयन केन्द्रीय कानून 1956 के आठवें नियम के अन्तर्गत **'मधुराक्षर' त्रैमासिक पत्रिका** से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का आवश्यक विवरण–

1. प्रकाशन का स्थान : जिला कारागार के पीछे,
   9 ब, मनोहर नगर,
   फतेहपुर (उ.प्र.) 212601
2. प्रकाशन की आवर्तिता : त्रैमासिक
3. प्रकाशक/मुद्रक का नाम : बृजेन्द्र अग्निहोत्री
4. राष्ट्रीयता : भारतीय
5. सम्पादक का नाम : बृजेन्द्र अग्निहोत्री
6. राष्ट्रीयता : भारतीय
7. पूरा पता : जिला कारागार के पीछे,
   9 ब, मनोहर नगर,
   फतेहपुर (उ.प्र.) 212601
8. कुल पूंजी का 1 प्रतिशत
   से अधिक शेयर वाले
   भागीदारों का नाम व पता : स्वत्वाधिकारी बृजेन्द्र अग्निहोत्री

*''मैं **बृजेन्द्र अग्निहोत्री** घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं।''*

–बृजेन्द्र अग्निहोत्री

कहानी

राकेश कुमार तगाला
tagala269@gmail.com

अभिनय

वह आज सुबह से परेशान था। वह पत्र पढ़कर रो रहा था। आखिर मेरा अपराध क्या था? जो मीना ने मेरे साथ ऐसा किया। वह खुद से तरह–तरह के सवाल कर रहा था। काश मैं मर जाता। वह दोबारा पत्र खोलकर पढ़ने बैठ गया।

''रवि, मैं जा रही हूँ। हमेशा–हमेशा के लिए। मुंबई मायानगरी मुझे बुला रही है। मुझे ढूंढने की कोशिश मत करना। तुम्हारा मेरा कोई मेल नहीं है। हमारे रास्ते अलग–अलग हैं। अब हम एक छत के नीचे नहीं रह सकते। वैसे भी तुम जैसे इंसान जीवन में धोखा खाने के लिए ही पैदा होते हैं। तुममें एक अच्छाई भी है। कोई भी तुम्हारे सामने बैठकर थोड़ा गिड़गिड़ा दे, फिर तो तुम गए काम से। तुम खुद को बड़ा दानवीर कर्ण समझते हो। मेरा कोई दोष नहीं, हर आदमी सफल होना चाहता है। सफलता की राह कठिन होती है। उसके लिए कई कठिन फैसले लेने पड़ते हैं। मैंने भी तुमसे अलग होने का फैसला ले लिया। पत्र पढ़कर आँसू मत बहाना। वैसे भी तुम औरतों की तरह, जब देखो गंगा–जमुना बहाना शुरू कर देते हो। तुम बड़े ही मूर्ख हो, समझ रहे हो ना... मैं क्या कह रही हूँ ? मैं फिर कह रही हूँ, मुझें ढूंढने का प्रयास नहीं करना।''

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

रवि पत्र रखकर फिर से रोने लगा– क्या मैं इतना बुरा हूँ ? फिर मुझसे शादी क्यों की थी... सारे समाज से लड़कर... हमारा समाज अंतरजातीय विवाह स्वीकार नहीं करता। पर तुम अड़ गई थी। तुमने अपने माता–पिता का बहिष्कार कर दिया था। मुझे आज भी वह दिन याद है। हमारे कॉलेज का वार्षिक समारोह, जिसमें तुमने सुंदर भाषण दिया था कि इंसान को आगे बढ़ाने के लिए कठिन से कठिन डगर को पार करने के लिए तैयार रहना चाहिए। अपना लक्ष्य नहीं छोड़ना चाहिए। तुम्हारा जोशीला भाषण सुनकर कॉलेज के लड़के–लड़कियाँ कुर्सियों से उठकर खड़े हो गए थे। अध्यापक भी तुम्हारी बहुत प्रशंसा कर रहे थे। सभी तुम्हें बधाई दे रहे थे। मैं भी उसी भीड़ में शामिल था। मुझे कभी नहीं लगा कि तुमने मुझे कभी नोटिस किया होगा। पर तुमने तो मुझे पूरी तरह हैरान दिया था। जब तुमने मेरा नाम पुकारा था– 'मिस्टर रवि, प्लीज रुक जाइए।' मेरे कदम खुद–ब–खुद रुक गए थे, तुम्हारी सुरीली आवाज सुनकर। तुम्हारा सवाल था– 'मेरा भाषण आपको कैसा लगा ?' मैं तुम्हें ही देख रहा था, बिना पलक झपकाए। शायद मुझे उसी समय तुमसे प्यार हो गया था। मन कर रहा था, अभी अपने प्यार का इजहार कर दूं। पर यह समय उचित नहीं था। 'जी, आपका भाषण कमाल का था! आपकी आवाज में कमाल का जोश है! आप तो अच्छी नेता बन सकती हो। आप इतनी सुंदर हो... अभिनेत्री बन सकती हो।' और तुम खिलखिला कर हँस पड़ी थी।

यह हमारी पहली मुलाकात थी। फिर तो हमारी मुलाकातों का सिलसिला चल पड़ा था। कभी कॉलेज कैंटीन में, कभी लाइब्रेरी में, पार्क में, बस में,सिनेमा में। सिनेमा, जब तुमने आमिर खान की फिल्म देखने की बहुत जिद की थी। मेरे लाख मना करने पर भी तुम नहीं मानी थी। क्या नाम था उस फिल्म का– 'अकेले हम अकेले तुम' मैं पीछे नहीं बैठना चाहता था। तुम मुझे खींचकर ले गई थी। पीछे आराम से बैठेंगे, पर मुझे डर था कि जब भी कोई रोमांटिक सीन आएगा। मनचले सिटी बजाएंगे... और आगे कुछ भी बोल नहीं सका था। तुम पूरी तरह फिल्म में व्यस्त थी। फिल्म पूरी होने के बाद भी, तुम्हारी फिल्म पूरी नहीं हुई थी। सिनेमा से बाहर आने के बाद भी

तुम हर सीन पर मुझसे तर्क–वितर्क कर रही थी। पहला सवाल था– क्या मनीषा कोईराला ने प्रेम विवाह करके अच्छा किया? अच्छा छोड़ो यह बताओ क्या आमिर खान का नया लुक तुम्हें पसंद आया ? क्या तुम्हें भी आमिर खान की फिल्म अच्छी लगती है? और ना जानें कितने ही सवाल कर डाले थे ? मेरा सिर चकराने वाला था। मुझे डर था कि कहीं मैं बेहोश ना हो जाऊं ? मुझे चुप देखकर तुम भी चुप हो गई थी। मैंने एक गहरी साँस ली।

मैं वर्तमान में लौट आया था। पत्र फिर से पढ़ना शुरू कर दिया–

''...अगर मुझे ढूंढने की कोशिश की तो तुम्हारे साथ बहुत बुरा होगा। पहली बात तो तुम मुझे ढूढ़ नहीं सकते। माया नगरी बहुत बड़ी है। फिर भी अगर तुमने मुझे ढूंढ निकाला तो मैं तुम्हें पुलिस के हवाले कर दूंगी। झूठे रेप केस में, तुम्हें जेल की हवा खिलवा दूंगी।''

जेल की हवा, कोर्ट–कचहरी। वह एक बार फिर अतीत के आगोश में चला गया।

जब हमने कोर्ट–मैरिज कर थी। हम घर से दूर चले गए थे। तुम्हारे माता–पिता ने मुझ पर कोर्ट केस कर दिया था। पुलिस रात–दिन हमारे ठिकानों पर दबिश दे रही थी। मीना, तुम्हारे घर, तुम्हारी सहेली से पूछताछ की जा रही थी। मेरे परिवार का तो बुरा हाल था। पुलिस हर तरह से उन्हें प्रताड़ित कर रही थी। उनके साथ बुरा व्यवहार कर रही थी। जब मैंने कहा था कि हम और अधिक नहीं छिप सकते तो तुमने किस बहादुरी से पुलिस कमिशनर को फोन किया था। और सहयोग की अपील की थी। हम दोनों कोर्ट में आए थे। तुमने किस दिलेरी से अपने परिवार के सामने ही मेरा हाथ थाम लिया था। यह कहकर– 'जज साहब अगर मेरे पति को कुछ भी हुआ तो इसका सारा दोष मेरे परिवार का होगा। वह हमें मारना चाहते हैं।' तुम्हारे पिता जी तुम्हें घूर रहे थे। और तुमने किसी की परवाह नहीं की थीं। तुम तो सिर्फ जीतना चाहती थी। कोर्ट परिसर में तुम्हारी दिलेरी की चर्चा हो रही थी। लोग मुझे भी हाथ मिलाकर बधाई दे रहे थे। और कह रहे थे कि मैं बहुत किस्मत वाला हूँ। जो मुझे मीना जैसी जीवन साथी मिली हैं। मुझे तुम्हारी रुचि का पता था। तुम

फिल्मों में काम करना चाहती थी, किसी भी कीमत पर। तुम दिन–रात फिल्मों का बारीकी से अध्ययन करती रहती थीं। फिर मुझसे उनके बारे में तर्क–वितर्क किया करती थी। तुम्हें तो मेरे खाने–पीने की भी सुध नहीं रहती थी। ऑफिस जाते समय जब भी टिफिन के बारे कहता था। तुम मेरे चेहरे पर गुस्सा देखकर भी नहीं डरती थी। बस मुझे पीठ पीछे से अपनी बाहों में भर लेती थी। मेरा गुस्सा तुम्हारा स्पर्श पाकर हवा में हो जाता था। मैं तुम्हारे आगे नतमस्तक हो जाता था। तुम्हें मेरी कमजोरी अच्छी तरह पता थी। उस दिन जब तुम सीढ़ियों से फिसलकर नीचे गिर गई थी। तुम्हें पाँव में मोच आ गई थी। मैं कितना घबरा गया था ? मैं बार–बार भगवान को कोस रहा था कि तुम्हारी जगह मुझे चोट लग जाती। पर तुम्हारे माथे पर दर्द की शिकन तक नहीं थी। तुमने खुद ही मालिश करके अपने पाँव को ठीक कर लिया था। तुम्हारी हिम्मत का मैं कायल था। मैं तुम्हारे सामने खुद को कमजोर समझता था या कमजोर था!

मैं मन ही मन कह रहा था– मीना अगर तुम मेरा साथ चाहती तो क्या मैं मना करता ? पहले भी तुम अपनी मनमर्जी ही करती थी। जब भी कोई फिल्म लाइन से जुड़ा व्यक्ति घर आता तो तुम घण्टों उससे बातें करती रहती थी। मैं तो उस दिन छुट्टी पर रहता था, तुम्हारे ही कारण। दिन में छह–छह बार तुम्हारे लिए कॉफी बनाता था। जब भी तुम घर पर खाना नहीं बनाती थी। मुझे यहीं कहती थी– बाहर खाने चलें, मैं तैयार रहता था। बस तुम्हें खुश देखना चाहता था। तुम ही मेरी खुशी थी। तुम्हें जब भी माया–नगरी से किसी रोल को प्ले करने के लिए बुलावा आता था। मैं सब काम छोड़कर तुम्हारे साथ चल पड़ता था। तुम्हें पता था कि मेरी सारी सेविंग धीरे–धीरे खत्म हो रही थी। पर मैं तुम्हारे लक्ष्य को पाने में तुम्हारा साथ दे रहा था। रोज–रोज छुट्टी लेना, मेरी नौकरी पर भी खतरा मंडरा रहा था। बॉस, मुझसे खुश नहीं था। पर तुमने ही सलाह दी थी कि बॉस को एक दिन घर पर बुला लो। पहले तो बॉस नहीं माने थे, पर जब मैंने काफी अनुरोध ने किया, तो बॉस मान गए थे। तुमने बॉस का जोरदार स्वागत किया था। वह तो तुम्हारी तारीफ करते नहीं थकते थे– 'तुम्हारी बीवी तो कमाल की है! गजब का

आत्मविश्वास भरा है उसमें। तुम्हारे हाथ तो मोती लग गया है।' बॉस ने कह दिया– 'तुम छुट्टी ले सकते हो।' पता नहीं तुमने क्या जादू कर दिया था ? तुम्हारा व्यक्तित्व ऊंचा होता जा रहा था।

जब तुम्हें पहला ब्रेक मिला था फिल्म में, तुम्हारा पहला रोल एक बेवफा का था। मैंने तुम्हें मना किया था कि तुम इस रोल को ना करो। पर तुमने सीधे शब्दों में कहा था– 'बड़ी मुश्किल से चांस मिला है।' वह फिल्म तो नहीं चली थी। पर तुम्हारे छोटे से रोल की भर पूर सराहना हुई थी। तुम आगे बढ़ने के लिए किसी भी हद तक जा सकती हो, तो तुमने हँसते हुए कहा था– 'जानू यह सिर्फ फिल्म की माँग थी। तुम भी ना...!' तुमने फिर मेरी कमजोरी का फायदा उठाया और मुझे बाहों में लेकर बोली– 'तुम बहुत जल्दी ही गर्म हो जाते हो।' उस दिन मुझे पहली बार डर लगा था कि कहीं आगे बढ़ने के चक्कर में तुम मुझे छोड़ ना दो। पर मैं गलत साबित हुआ। उस दिन से तुम मुझे अधिक प्यार करने लगी थी।

जब भी मैं कहता– 'मीना अब हमें परिवार को आगे बढ़ाने के बारे में सोचना चाहिए। हमारी शादी को चार साल हो गए हैं।' तुम बरस पड़ी थी– 'अभी बच्चे पैदा करने की क्या जल्दी है ? रवि, बच्चे पैदा करने के लिए जिंदगी पड़ी है। पहले मुझे अपना करियर बनाने दो। तुम जानते हो फिल्मों में बच्चों वाली को हीरोइन कौन लेता है?'

'क्या बात करती हो मीना ? तुम बहुत सुन्दर हो...!'

'अब मक्खन लगाना बंद करो। तैयार हो जाओ, आज मुझे नई फिल्म की स्क्रिप्ट सुननी है।'

'किस विषय पर...'

'यह एक अंग्रेजी नवल हैं– 'लेडी चार्टली का प्रेमी'।'

'मीना तुम भी किस तरह का रोल करने का तैयार हो जाती हो।'

'क्यों इसमें क्या बुरा है ?'

'बुरा ही बुरा है। उसमें नायिका अपने पति को छोड़ देती है।'

'रवि अब बस भी करो, माया–नगरी में काम मिलना कितना कठिन है ? अगर किसी तरह काम मिलता है, तो तुम...! बस करो,

अगर तुम नहीं चाहते तो मैं काम करना छोड़ देती हूँ। तुम्हें मेरा फिल्मों में काम करना कोई खास पसंद नहीं है।'

मुझे अपने व्यवहार पर शर्म आ रही थी– 'मीना, तुममें तो अभिनय कूट–कूट कर भरा पड़ा है। तुम्हें बहुत सारी फिल्में मिल जाएगी। तुम चिंता मत करो। तुम तो अभिनय के लिए बनी हो।'

'हाँ, आज तुमने मेरा दिल जीत लिया है। तुम कितने अच्छे हो, रवि। पर तुम बात–बात पर भावुक हो जाते हो। भावुकता इंसान की कमजोरी है, समझे मेरे सरताज।'

दूसरी तरफ बॉस का व्यवहार भी मेरे प्रति घृणा से भरता जा रहा था– 'जब नौकरी ढंग से करनी नहीं है तो छोड़ क्यों नहीं देते ? ऐसे तो काम चलने वाला नहीं है। तुम्हें जल्दी ही निर्णय करना होगा।'

'सर, बस थोड़ा सा टाइम चाहिए।'

अब मुझे पूरा विश्वास हो गया था कि नौकरी भी हाथ से जाने वाली है। आज तो बॉस ने सभी के सामने ही मेरी इज्जत उतार दी थी।

'रवि, देखो मुझे कई फिल्मों में काम करने के ऑफर मिले हैं।' वह कहती जा रही थी, मैं सुनता जा रहा था। मुझे समझ नहीं आ रहा था। मीना क्या कह रही थी ? 'बस अब मैं शानदार हीरोइन बन जाऊंगी। मेरे अभिनय पर जोरदार तालियाँ बजेगी। तुम, देखना मेरा सपना पूरा होगा। मेरी मेहनत रंग लाएगी। मेरा अभिनय मुझे अमर कर देगा।'

मैं फिर वर्तमान में लौटाया। पत्र की आखिरी लाइन थी।

''...मैं तुम्हें जेल भिजवा दूंगी, अगर तुमने मुझे ढूंढने की कोशिश की तो... ।''

डोर बेल लगातार बज रही थी। सामने पेपर वाला खड़ा मुस्कुरा रहा था– 'सर देखो, मीना जी को उनके शानदार अभिनय के लिए बेस्ट अभिनेत्री का अवॉर्ड मिला है। बधाई हो, बधाई हो।'

मैं मन ही मन कह रहा था– मेरे साथ भी तो मीना इतने साल से अभिनय कर रही थी। प्यार का अभिनय...!

उसने दरवाजा बंद कर दिया।

कहानी

चिंदीचोर

रजनी शर्मा
बस्तरिया, सोनिया कुंज,
116 देशबंधु प्रेस के सामने,
रायपुर, छत्तीसगढ़ 492001
rainibastariva-153@gmail.com

नीम का पेड़ आज लहरा उठा। आज नियत समय पर सोमारु अपने लंगर–लश्कर के साथ उसकी छांव तले जा पहुंचा था। धूप में दिनभर बैठने के कारण तांबई हो चली त्वचा, सुरती (तंबाकू) से पीले रंग के हो चुके दांत, लगभग छहफुटिया कद। संतुलित पर पुष्ट कद काठी। एक प्लास्टिक की चप्पल और आदम जमाने की सिलाई मशीन। कतरनों से भरा झोला। कुल जमा इतनी ही पूंजी उसके पास थी। या यूं कहिए विरासत में उसे इतना ही मिला था।

नीम की शाखों ने मानो अपनी बांहें फैलाकर अपने आप को हैंगर के रूप में सोमारू के सामने प्रस्तुत कर दिया था। सोमारू ने झोला जो करतनों से भरा था और तुमा (पात्र) के टोडरा (गर्दन) नीम की शाखों पर अटका दिया। सिलाई मशीन जमीन पर रखी। आसपास की जगह को साफ किया और स्वयं भी मशीन लेकर बैठ गया। नीम के नीचे बिना दीवारों वाली टेलरिंग की दुकान अब सज चुकी थी।

सोमारू का जीवन मशीन के चक्कों ऊपर ही चलता था। आड़ी तिरछी सिलाई करके वह रोज के पसिया भात व नोन (नमक) के लिए ही पैसे जुटा पाता था। क्या पता वह सिलाई करता था या

बस्तर के ग्रामीण महिलाओं के सपने सिलता था। या फिर पुराने हो चुके आकांक्षाओं डूबी उम्मीदों वाले डोकरा–डोकरी, बुजुर्गों के सपनों की कथड़ी (पुराने कपड़ों से बना बिछावन ओढ़ावन) सिलता था।

मड़ई की घोषणा हो चुकी थी पिछले हफ्ते सोनारपाल की मड़ई में। कोतवाल ने तेतर रुख खाल्है (इमली के पेड़ के नीचे) मुनादी कर दी थी कि आगामी मड़ई में मेटगुड़ा में होगी। नीम भी आज किलक रहा था...। मुफ्त में ठंडी हवा बांट रहा था। आखिर उसकी छांव तले लोग जो आते हैं कुछ सिलवाने के लिए। सोमारू के आस–पास के गांव में दर्जी सोमारु की तूती बोलती थी।

कोयलू ने पास आकर अपनी फटी धोती सोमारू को देते हुए कहा– 'ऐके खिंडिक सुजी मारून देस।' (इसे जरा सिलाई कर दो)। गोया कि सोमारू कपड़ों का डॉक्टर हुआ।

पूरे मड़ई में बाजा, पोंगा बज रहा था। बाजू में कुछ घंटों को रखकर कढ़ाई चढ़ चुकी थी। गुड़िया खाजा बह बन रहा था। इतनी मीठी मीठी खुशबू आ रही है। अहा.... नीम की पत्तियां भी लरज जा रही थी। उन्हें भी अपने कड़वी पत्तियों के स्वाद से ऊब होने लगी थी। अब वे भी मीठी–मीठी बास अपने नथुने सरंध्र से अवशोषित करना चाह रहे थे। धूप चढ़ आई थी। आखिर नीम का पेड़ सोमारु को कब तक बचाता। चमड़ी तपने लगी थी। आतें कुलबुलाने लगी थीं। बोबो खाने को मन ललचा रहा था। पर पैसे अभी खर्च हो गए तो आगामी मड़ई तक गुजारा कैसे होगा ?

सोमारू उस नीम के पेड़ पर टंगे तुमा को निकालकर मड़िया पेज दोनों में रखकर सड़प सड़प गटक गया। आंतें शांत हुई।

दिन के दो बज गए थे। अभी तक दो–तीन ग्राहक ही आए थे। सोमारू ने सिर उचकाकर देखा भीड़ में उन्माद छाया हुआ था। मुर्गा लड़ाई जो चल रही थी। मुर्गा लड़ाई में दो पक्ष होते हैं। दोनों अपने–अपने मुर्गों सको सल्फी (मध) मिला दाना खिला–खिला कर उकसा रहे थे। मानो यह मुर्गा लड़ाई भी एक प्रकार का टेलरिंग हो। जहां पर सही नाप जोख है तो उसे बिगाड़ने की भी कला का प्रदर्शन भी है। भीड़ जुटाने और भीड़ को तितर–बितर कर दो अलग–अलग गुटों में विभक्त करने का भी धंधा गांव का सरपंच सोनाधर ने चला रखा था। मुर्गा लड़ाई के स्पांसर के रूप में सोनाधर की लगभग सभी मड़ई में तूती बोलती थी। बाजार पर कब्जा उसी का था। किसका

मुर्गा दांव पर लगेगा, किसके पक्ष में भीड़ का जयकारा लगेगा। यह सब सोनाधर के 'भीड़ टेलरिंग' के हुनर के हाथों नियंत्रित होता था। मुर्गा लड़ाई देखने आई लेकियों (लड़कियों) की टोलियां स्थानीय लुंगी में अपना मुंह छुपाकर देख रही थी। पर कनेर की आंखों के एक–एक भाव का नाप–जोख सोनाधर पिछले कई दिनों से रख रहा था।

कनेर पनारा कुल की कन्या थी। गोरा रंग उस पर ठुड्डी में गोदने के चित्र पर मोरपंखिया गोदना उसके बस्तरिया सौंदर्य को और भी गमका जाते थे। कनेर अपने नाम के अनुरूप चट्ट पीला ब्लाउज पहने घुटने के ऊपर बंधी साड़ी और जंगली टेसु से लाल ओंठ। अभी तो कनेर और सेवती ने मिलकर बजरिया पान खरीदकर खाया था। खाया कम था उन दोनों ने। उनकी पूरी कोशिश यह की थी कि पान की लाली होठों के अभेध किले के भीतर ही सुरक्षित रहे। चगल–चगल कर दोनों ने अपने–अपने होठों को सरई पान के पिहुन पाहुन पाना के भीतर जैसे पान की लोई को रख रहे थे। और अंगारों से सुर्ख रंगे होठों को देखकर दोनों कठ्ठल गये (हंस पड़े)।

सोनाधर आज सल्फी के सुरूर में बार–बार कनेर के पीछे जा रहा था। पिछले कई मड़ई में कनेर में सोमारू के पास पोलका (ब्लाउज) सिलवाया था। गांव में जहां सदियों से नैसर्गिक अनावृत कंधों का सौंदर्य बस्तर के चप्पे–चप्पे में बिखरा रहता था। वहां अब शहरिया बेलाऊज ब्लाउज वाली संस्कृति भी पनपने लगी थी।

बस्तर बाला के नैसर्गिक सौंदर्य को रैपरर पहनाने की विकृत संस्कृति ने भी पैर जमाने शुरू कर दिए थे। इसके पहले हाथ की बुनी मात्र एक साड़ी मेहनतकश बस्तर बालाओं के कसे सौंदर्य को ढ़कने के लिए पर्याप्त हुआ करती थी। और यह जिम्मेदारी उनके अनावृत कंधों ने उठा रखा होता था। जो पूरे समय साड़ियों की गांठ को अपने ऊपर टिकाए रखते थे। मजाल है कि एक सूत भी सरक जाए।

कनेर ने अब कुछ–कुछ डिजाइनों की फरमाइश शुरू कर दी थी। ए बीती डारुन देस (ऐसा बना दो वैसा बना दो)। कपड़े सीते–सीते नेह का तानाबाना भी बुना जाने लगा था। कनेर और सोमारू के बीच। अब तो लगभग सभी मडई में एक नया बेलाउज। अब तो कनेर और खूबसूरत लगने लगी थी। क्या पता यह सोमारू

के नेह की लुनाई थी या फिर रंग–बिरंगे क कतरनों से बने ब्लाउज का कमाल था।

नीम का पेड़ अब कसमसाने लगा था। उसकी छांव के अब अनेक हिस्सेदार होने लगे थे। पर सोमारू को कोई एतराज नही था। उसे तो नीम की छांव से अच्छी नजर बचाकर आती हुई धूप बहुत भाती थी। सच ही तो है कि तपती दोपहरी में जब मड़ई नही होता था। तब सोमारू गांव के किसी नीम के पेड़ के नीचे ही अपनी दुकान सजाए घंटों बैठे रहता था। तपती दोपहरी में जब लोग छांव की चोरी करते थे। वह धूप बटोर कर खुश रहता था। उसे भला क्या पता कि विटामिन बी कंपलेक्स विटामिन सी से भी ज्यादा जरूरी है। सोमारू ही क्या बस्तर के आदिवासियों की मजबूत कद काठी का राज भी यह धूप बटोरना ही था। जो आठ आठ घंटे तक धूप में काम करते हों वह भला धूप से धनवान ना हो ऐसा कभी हो सकता है क्या ? पता नहीं अब गांव और गांव के जंगलों में भी अब शहरों की तरह धूप की भी चोरी होने लगे। अगर सोनाधर का बस चले तो वह तो पूरे धूप पर भी उगाही शुरू कर दे।

आज कनेर ने सोमारू से पूछ ही लिया– 'तुम्हारे झूले में क्या है ?'

'चिंदी।'

ना उसके आगे कनेर ने कुछ पूछा, ना ही सोमारू ने जवाब दिया।

नेह की दुकान पर मनचाहे साथी के हाथों कैशौर्य के सपनों से कुछ सौगात का मिलना। चिंदी–चिंदी संसाधन पर भरपूर नेहकृ। नेह की कतरन से बुनी चादर जिसमें सोमारू और कनेर का नाम लिखा गया था। जिसमें उन दोनों के नेह के सूत से भविष्य के सपने टांके जा रहे थे। अब उसे सोनाधर बलपूर्वक ओढ़ने जा रहा था। गांव में सरपंच का रुतबे ने कनेर के पिता के ऊपर धाक जमाना प्रारंभ कर दिया था। असर दिखना शुरु हो चुका था। कनेर बहुत रोई पर मात्र उस दर्जी सोमारू की भला क्या बिसात जो सरपंच के रुतबे के आगे उस गांव में टिक पाता।

आज तेतर रुख इमली के पेड़ के नीचे सोनाधर और कनेर की मंगनी हो रही थी। कपड़ा सीते–सीते सुमारू के हाथों में सुई चुभ गई। क्या पता यह विवशता या फिर विछोह की चुभन थी। जो अब

कनेर को सोमारू से दूर किये जाने का संकेत दे रही हो। नीम के पत्ते झरने लगे थे। मानो उसके कड़वे पत्ते सोमारू को समझा रहे हो कि मेरे पत्तों से भी कड़वी कुछ जीवन के गरल भी होते हैं।

सोनाधर मूछों पर ताव देता हुआ सोमारू के सामने शहर से लाए कपड़े का लठ्ठा लेकर खड़ा था। उसने कहा– 'कीसिम कीसिम चो कुर्ता सिलून देस। मोचो का जे। (अलग–अलग डिजाइनों के कुर्ते मेरे लिए सी देना ब्याह है मेरा)। एकदम नुक्को असन। अच्छे से सीना।'

सोमारू का स्वर–यंत्र घरघराने लगा, आंखों के पानी में डूबते हौसलों के चक्के में तेल डाल दिया हो। नेह की डोरी बार–बार पहिए से उतरी जा रही थी। और सोनाधर की गर्विली विजयी मुस्कान की सुई से सोमारू का मन छलनी हुआ जा रहा था। ठीक ही तो है... कहां वह साधारण दर्जी और कहां सरपंच सोनाधर। नीम के पत्ते आज बेमन डोल रहे थे...।

ब्याह नजदीक आ गया था। ब्याह क्या वर–वधू सल्फी का दोन एक दूसरे के ऊपर उड़ेलेंगे, और ब्याह हो जाएगा। सरपंच आज अपने कुर्ते लेने आया था। वह चार की जगह तीन कुर्ते देखकर बिफर गया– 'मैंने तो चार कुर्तों का कपड़ा दिया था।'

सोमारू कुछ बोलता इसके पहले सल्फी के नशे में सोनाधर और उसके लठैत सोमारू के ऊपर पिल पड़े।

यह मात्र कपड़े की चोरी का आरोप नही था। यह तो खुन्नस थी। या खीज थी जिसने परास्त सोनाधर ने सोमारु के उपर उतारना शुरू कर दिया था। गांव का सबसे धनवान होने के बाद भी कनेर का सोनाधर के प्रति अनुराग। डंडों से पीटते पीटते सोनाधर कहने लगा चोर कहीं का...। सोमारू पस्त हो चुका था। पहले से ही वह मन से टूट चुका था। अब भला तन क्या चीज थी। मशीन एक और लुढ़क गई थी। नीम की पत्तियां बेतरतीब सी सरसरा रही थीं। मानो बिलख रहे हों।

चिंदियों के झोले से अचानक कई रंग बिरंगे बेलाउज (ब्लाऊज) बिखर गए। जिसमें सोनाधर के दिए गए कपड़ों से बची चिंदियां टंकीं थी। चिंदियां बिखर चुकी थी। पीली, गुलाबी, लाल, नीली, हरी....।

कहानी

सतीश 'बब्बा'
कोबरा, चित्रकूट, उत्तर प्रदेश 210208
babbasateesh@gmail.com

कलयुग का सुदामा

वह धूप से जलजलाती दोपहर, जिसमें पशु–पक्षी, पेड़ पौधे, वनस्पतियाँ गर्मी से सभी जल रहे थे। मनुष्य पानी साथ लेकर चलते, फिर भी चैन नहीं, तन ढक कर चलते या घर के अंदर रहते फिर भी जलता तन बदन। वह गरीब, गरीबी से लाचार, फटे कपड़ों में जो न के बराबर तन के ऊपरी भाग में थे। हाँ, इज्जत और लज्जा बचाने के लिए वह शरीर के गुप्तांग को अच्छी तरह से बंद किए था, यह कहुँ कि, वह शरीर के ऊपरी हिस्से को खुला छोड़कर गुप्तांग में लपेटकर बंद करना उसकी मजबूरी थी। नाम तो उसका चंद्रमा था। लेकिन वह किसी भिखारी से कम नहीं लगता था। और उसकी पत्नी का नाम लक्ष्मी था। जो मायके से लाई एक धोती को पूरे साल भर पहेनती थी। और चंद्रमा की दी धोती को सिल सिल कर जब तक बन पाती तब तक पहेनती थी। हालांकि वह खुद्दार शारीरिक रूप से स्वास्थ्य था। गरीबी और भुखमरी से शरीर दुबला हो गया था। पत्नी लक्ष्मी तो उसकी परछाई थी। और नाम तथा रूप लावण्य और गुणों से भी वह लक्ष्मी, लक्ष्मी ही थी। दोनों ने सलाह की थी कि संतान तभी जन्मेंगे, जब उनके पालने लायक हो जाएंगे।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

वह जाति से ब्राह्मण था। अन्य जाति का होता तो निश्चित तौर पर जाति भाई उसे उठाने का प्रयास करते। लेकिन ब्राह्मण, ब्राह्मण की ही टाँग खींचते रहते हैं, और उसके गरीबी की हँसी उड़ाते हैं। यहाँ यह कहावत सत्य प्रतीत होती है कि 'ब्राह्मण कुत्ता नाई, जात देख गुर्राई।' और 'ब्राह्मण कुत्ता हाथी, तोड़े आपने जाती!' इतनी गरीबी के बावजूद भी चंद्रमा में खुद्दारी कूट कूट कर भरी थी। चंद्रमा बस नहीं, लक्ष्मी भी स्वाभिमानी और खुद्दारी में कम नहीं थी। वह भूखी मर जाना पसंद करती थी, लेकिन किसी के सामने उनको हाथ फैलाना गवारा नहीं था। जब अम्मा बापू उनको छोड़कर भगवान को प्यारे हो गए थे, यही तो दुनिया की रीति है। नयी नयी शादी थी, सूरत मुम्बई बहू को छोड़कर गया था। लेकिन लाक डाउन के कारण पैदल चलकर घर आने में जो दुर्दशा हुई थी, बयान कर पाना संभव नहीं है। आखिर महीने दो महीने की कमाई साल कैसे पूरा करती! दो बीघा खेत था वह भी रेहन था। गाँव में कोई काम नहीं था। फिर भी करोना लाक डाउन का डर साल भर के बाद भी सता रहा था। प्रधान अपने खासमखास को ही काम दे रहा था। और प्रधानमंत्री किसान निधि भी कयी बार फार्म भरने के बावजूद भी नहीं मिली, आखिर करे तो क्या करे! आज कलयुग के इस सुदामा को द्वापर के कृष्ण क्यों मदद करने आते ?

चंद्रमा और लक्ष्मी के जीवन में चारों तरफ अँधेरा ही अँधेरा था। दिन के इस चिलचिलाती धूप में भी प्रकाश की कोई किरण नहीं थी उनके लिए। आज महुआ के फूल बीनकर ठीक दुपहरी दोनों नंगे बदन के साथ, नंगे पैर, पसीने से तर ऊपर से महुआ का रस उन्हें भिगो रहा था। यह भी गर्मी महुआ की जग जाहिर होती है। ठंड में, जूड़ी सन्निपात में महुआ की धूनी प्रसिद्ध है। फिर भी पेट सब कुछ कराता है। दोनों की भरी जवानी थी, शादी के बहुत दिन नहीं हुए थे, लेकिन लॉकडाउन ने तो उनकी जिंदगी ही चौपट कर डाली थी। अपनी गरीबी के बावजूद भी वे दोनों हार नहीं मानते थे। एक दिन चंद्रमा से लक्ष्मी ने कहा, 'अजी सुनते हो, जब तक हमारे गाँव में हमें, न ही, बाहर तुम्हें काम नहीं मिलता तब तक हम दोनों ब्रह्मचारी ही रहें तो बेहतर होगा!' वो दोनों साथ सोते, एक दूसरे को हद से ज्यादा प्यार करते लेकिन शारीरिक भोग से दूर रहते। यह एक अद्भुत प्रयोग

था। और यह उनके प्रेम की पराकाष्ठा थी। अगर लक्ष्मी व्यभिचारिणी होती, तो लोग जान के साथ धन भी बरसाते, लेकिन आज के युग में भी अद्वितीय पतिव्रता, साध्वी थी।

गर्म धूप धरती पर आग की तरह थी। कोमल पाँव लक्ष्मी के जल रहे थे, जिसे चंद्रमा महसूस कर रहा था। और महुआ के पत्ते भी झड़ गए थे। लेकिन कुछ महुआ के पके पत्ते बिना सूखे चंद्रमा ले आया था। और लक्ष्मी के पैरों में चप्पल की जगह पहना देता था, ताकि लक्ष्मी के पैरों में फफोला नहीं पड़े। गाँव की नदी सूख गई थी। तालाब कब के सूखे थे, कुंए भी बिन पानी के थे। अब तो हैण्डपम्प में ही पानी की आशा थी। दोनों जन आकर महुआ के फूलों के जीरा निकालकर पकने के लिए चूल्हा में चढ़ाया। तब तक पसीना सूख चुका था। अब हैण्डपम्प में आकर एक दूसरे को पानी औट औट कर, पानी निकाल निकाल कर नहवाते रहे ताकि गर्मी शांत हो। फिर घर आकर उसी महुआ को खाकर दोनों एक दूसरे से लिपटकर सो जाने के उपक्रम करने लगे। अगर स्वस्थ आदमी महुआ खाए तो उसे गहरी नींद आती है। लेकिन लू से तपे शरीर को चैन कहाँ ? दोनों शरीर की जलन से, तड़पते रहे। दवा के लिए पैसा नहीं था। पानी और चना की भाजी भी नहीं उपलब्ध हो सकी। क्योंकि चने का शाक वो बचा नहीं पाए थे। यह पेट जो बैरी था। वो सारी रैना तड़प तड़प कर अपना जीवन ही समाप्त कर डाले। सुबह दिन चढ़ने पर लोगों ने कहा, 'आज न ही चंद्रमा निकला न ही लक्ष्मी!' शायद चंद्रमा के जीवन की वह अमावस की रात थी। घर के अंदर जाकर लोगों ने उन दोनों को मृत पाया। उनके पास एक धेला तो था नहीं, कौन लफडा पाले और इस बात की जानकारी शासन को दे दी गई। एम्बुलेंस आई और उनकी मौत को कोरोना मौत कहकर, न जाने कहाँ दफनाया गया और कहाँ जलाया गया। अगर कोई मंत्री मिनिस्टर या सरकारी पार्टी, पक्ष विपक्ष का नेता होता तो पचास लाख की घोषणा होती, लेकिन आज चंद्रमा और लक्ष्मी की मौत एक कुत्ते की मौत से भी बदतर हो गई थी। सत्य ही किसी पैसों के ढेर में चलने वाले किसी सेठ या नेता ने कहा था कि, 'गाँव में ढोर और मूर्ख रहते हैं!' इन नेता लपेटी को गाँव तभी सुहाते और अच्छे लगते हैं जब चुनाव आते हैं... वरना....!

लघुकथा

वैदेही कोठारी
48 राजस्व कॉलोनी रतलाम (मध्य प्रदेश)
vaidehikothari09@gmail.com

काश...

चारों ओर कोरोना का हाहाकार मचा हुआ था। सभी लोग अपने अपने तरीके से कोरोना के बचाव में कार्य कर रहे थे,साथ ही अपनी इम्युनीटी बढ़ाने की सारी जद्दोजहद भी चल रही थी। नीरू व उसके परिवार वाले भी सभी तरह के उपाय कर रहे थे, कोरोना को भगाने के लिए! कभी हवन तो कभी दिन दिन भर पूजा पाठ उपवास करना।

नीरू के सुसराल में सभी लोग अत्यधिक धार्मिक कर्मकांड करने वाले लोग, किंतु कोरोना होने से कुछ ज्यादा ही.... रोज कुछ न कुछ हवन और कुछ कर्मकांड क्रिया चलती रहती थी। नीरू का मध्यम वर्ग छोटा परिवार था। घर में सास ससुर, ननद, नीरू के दो बच्चे लड़का दस साल का, लड़की छः साल की पति रूपेश सभी लोग साथ ही रहते थे। रुपेश प्रायवेट कम्पनी में काम करता था, लॉकडाउन में वर्क फ्रॉम होम चल रहा था किंतु सेलेरी आधी कर दी थी। हालांकि ससुर की पेंशन थी तो ज्यादा परेशानी नहीं हुई लॉकडाउन के दौरान। खैर घर के बाहर तो कोरोना फैल ही रहा था। किंतु नीरू के घर में सभी स्वस्थ्य थे। सभी जगह वैक्सीनेशन

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

भी चल रहा था। फोन पर जब भी दोस्त या रिश्तेदार बात करते तो पहला सवाल उनका यही होता कि वैक्सीन लगवा लिया ? किंतु नीरू के ससुर जी बडे घमंड के साथ बोलते हमें क्या जरूरत हम तो पूरी तरह सेफ व सुरक्षित है। साथ ही घर से भी नही निकलते है। सभी लोग घर में हवन पूजा पाठ करते है। हमारे साथ तो भगवान है, हमें क्या कोरोना होगा? रिश्तेदार बोलते भगवान तो सभी के साथ है फिर भी वैक्सीन तो लगवा ही लो। ससुर जी बोलते– देखो भई कई न्यूज चैनल में मंत्री जी भी बोले कि वैक्सीन से लोग मर रहे है। और तो और हमारे सामने वाले शर्मा जी वैक्सीन लगवा कर आए और दूसरे दिन उनकी मृत्यु हो गई।

ससुर जी की ये बातें घर के सभी सदस्य के दिल दिमाग में बैठ गई थी। इसी तरह के विचार घर में सभी लोगों के हो गए थे। ये सुन सुन नीरू के भी यही विचार बन गए। नीरू का स्वभाव मिलनसार होने से सभी रिश्तेदार और दोस्तों के अकसर फोन आते रहते थे। सभी लोग यही पूछते– 'वैक्सीन लगवा लिया, वेक्सिन लगवा लो यार कम से कम मां पिताजी को तो लगवा ही दो।'

नीरू बोली– मैं तो बोलती हूं, पर कई चैनल पर कुछ न कुछ वैक्सीन को लेकर मरने की झूठी अफवाहें साथ ही आसपास वालों की नकारात्मक खबरें सुन कर इनका मन नही करता, वैक्सीन लगवाने का।'

'तुम तो लगवा लो।'

नीरू तपाक से बोली– 'अरे मैं तो अभी यंग हूं। मुझ पर तो वैसे भी कोरोना का असर ज्यादा नहीं होगा। सर्दी जुकाम की तरह होकर चला जाएगा।'

सभी लोगों से नीरू की अधिकतम समय यही बातें होती रहती थी।

घर के अंदर सभी का समय अच्छी तरह से गुजर रहा था। पर वक्त कब एक जगह ठहरता है। कोरोना ने नीरू के घर पर भी दस्तक दे ही दिया। पता ही नहीं चला... दबे पांव कब कोरोना ने घर में अपने पैर पसार लिए। घर के सभी लोग कोरोना पाजिटिव हो गए। सभी को घर में क्वांटाइन कर दिया। कहते हैं– जब वक्त खराब आता

है, तो सब कुछ खराब होता जाता है। पूरा घर सील कर दिया। फल सब्जिंया सब बंद हो गई। बाहर से टिफिन आने लगा। छोटे–छोटे बच्चे भी अपनी मां–पिताजी, दादा–दादी से ही दूर हो गए। कोई किसी को हाथ तक नही लगा सकता था। हालांकि इलाज से सभी लोग धीरे–धीरे ठीक हो रहे थे। किंतु नीरू की तबीयत ठीक होने की बजाय और अधिक खराब होती जा रही थी। डॉक्टर ने कोरोना वार्ड में एडमिट कर लिया।

नीरू की हालत दिनों दिन नाजुक हो रही थी, उसको अब ऑक्सीजन भी लगाना पड़ रहा था। नीरू अकेले ही कोरोना से संघर्ष कर रही थी। वह पूरी तरह निष्क्रिय होती जा रही थी। किंतु उसका अचेतन मन सक्रिय था। अब नीरू को रूपेश के स्पर्श की लालसा हो रही थी। 'काश रूपेश मेरे सर को अपनी गोद में रखते, मेरा सर सहलाते, मुझसे बोलते– तुम जल्दी ठीक हो जाओगी! मेरे बच्चे मेरे हाथों को उनके छोटे–छोटे हाथों में लेकर मुझसे बातें करते। मेरी माँ मुझे जल्दी ठीक होने की सांत्वना देती। लेकिन मैं किस खतरनाक बीमारी से ग्रस्त हो गई हूं कि कोई मेरे पास भी नही आ सकता है। अगर मैं मर भी जाउंगी तो भी मेरे पति या कोई भी सदस्य अंतिम समय में भी मेरे पास नही होगा। अब नीरू को समझ आ रहा था, कि काश हम सब भी वैक्सीन लगवा लेते तो अच्छा होता। हमारे घर की ऐसी स्थिति नही होती। मैं मौत के मूंह में नही जाती। अब तो भगवान ही चमत्कार कर सकता है, नीरू का अचेतन मन रह–रह कर यही बात सोच रहा था– काश.....हम भी वैक्सीन...!

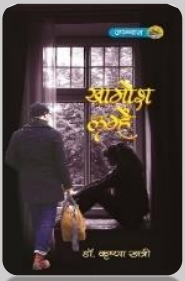

खामोश लम्हें

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-944444-6-6 संस्करण : 2020, मूल्य : 200/-

व्यंग्य

अंकुश्री
8, प्रेस कॉलोनी, सिदरौल, नामकुम, रांची (झारखण्ड) 834 010
ankushreehindiwriter@gmail.com

मियां मंहगू का मज़मा

"सावधान! बामुलाहिजा होशियार!!" मियां मंहगू के आने के पहले उनकी जगह पर खड़ा होकर सेठ गोविंदा बोले जा रहा था।

तभी मियां मंहगू पहूंच गये । अपनी जगह गोविंदा सेठ को खड़ा देख कर बोलने लगे, "अरे ! मेरे पहुंचने से पहले तुम पहुंच कर यहां किसको सावधान और होषियार कर रहे हो ?" सेठ गोविंदा को अपने मज़मा–स्थल पर बोलते देख कर मियां मंहगू ने पूछा, "लगता है तुम मेरे ग्राहकों को भड़का रहे हो, ताकि मैं यहां मज़मा नहीं लगा सकूं।" उनके चेहरे पर चिंता के भाव दिख रहे थे।

"नहीं मियां, ऐसी बात नहीं है । आपको ऐसा लगता है कि भला मैं ऐसा कर सकता हूँ ?" उसने धीरे से कहा, "मैं तो आपकी अनुपस्थिति में ग्राहकों को बुलाने की कोषिष कर रहा हूं, ताकि जब तक आपके आने में देर हो रही है, कुछ मज़मा लग जाये । जो लोग पूरी तरह असावधान हैं, उनके कानों में 'सावधान' और 'होषियार' शब्द पड़ने से उनके कान खड़े हो जाते हैं और वे ऐसी बात करने वाले की ओर दौड़े चले आते हैं। मैं लोगों को बता रहा हूं कि वे सावधान और होशियार हो जायें, काला धन जब्त करने के लिये शीघ्र ही छापामारी होने वाली है।"

"लेकिन गोविंदा! छापामारी करने के पहले से यह अनाउंसमेंट क्यों कर रहे हो ?" मियां मंहगू के पूछने पर सेठ गोविंदा बताने लगा,

''इसीलिये अनाउंस कर रहा हूं, ताकि छापेमारी का आयोजन तो हो जाये, कागजी से लेकर जिंदा घोड़ा तक दौड़ जाये, मेरा मतलब साहेब बहादुरों का टूर पूरा हो जाये, उन्हें यात्रा भत्ता मिल जाये, लेकिन परिणाम ढ़ाक के वही तीन पात, छापामारी करने वालों के हाथ कुछ नहीं लगे। अनाउंमेंट सुन कर लोग पहले से ही पूरी तरह सावधान हो जायें। हमारी यही व्यवस्था है। इसमें कोई क्या कर सकता है ?''

''लेकिन वह कैसे ?'' मियां मंहगू अपनी बातें सेठ गोविंदा को पूरी तरह समझाने का प्रयास कर रहे थे। इसलिये वे विषय का विस्तार कर रहे थे। काला धन और छापेमारी की बात वे पहले भी सुन चुके थे, मगर आज यही बात वे गोविंदा के मुंह से सुनना चाह रहे थे।

''यह तो बहुत साधारण–सी बात है।'' सेठ गोविंदा ने कहा, ''याद होगा कि काला धन निकालने के लिये पिछली दषाब्दी में भी एक अभियान चलाया गया था। अभियान के तहत कितना काला धन पकड़ाया यह तो पता नहीं है। काला धन बहुत सारे लोगों के पास था। उनमें से अनेक लोगों को काला धन को सफेद करने का सुअवसर मिल गया था। वह अभिया नही ऐसा था कि उसके चलाने से पहले ही लोग सावधान हो चुके थे । जब पकड़–धकड़ शुरू हुई तो परिणाम हुआ ठन–ठन गोपाल। अभियान बहुत बड़ा और पकड़े गये बहुत थोड़े–से लोग। एक बात पता है ? उन्हीं लोगों का काला धन पकड़ा जाता है, जो स्वयं उसे पकड़वाना चाहते हैं। वरना हो–हल्ला के बाद कौन अपना काला धन किसी को मुफ्त में देना चाहता है। ह्ह–हअ–अ! छापेमारी की खुशियां बहुत से लोगों ने मनायी। सुरदास की काली कमरिआ, चढ़े ना दूजा रंग। लेकिन चमत्कार हो गया। एक तो रंग चढ़ा और वह भी काले पर उजला। काला धन सफेद हो गया।''

''अच्छा, अब अपना ऐलान बंद करो! मुझे काला धन सफेद करने का नुस्खा ईजाद नहीं करना है। अपनी देवा बेचनी है'' मियां मंहगू दवा सजा चुके थे। सेठ गोविंदा चला गया। वह अपनी दुकान सजाने में लग गया। मियां मंहगू मज़मा लगाने के लिये चिल्लाने लगे, ''कदरदानों! मेहरबानों!! लीजिये, लीजिये दवा ले लीजिये...।''

लेख

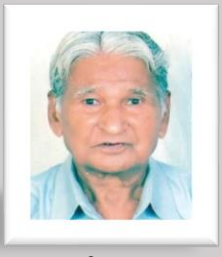

शंकर लाल माहेश्वरी
पूर्व जिला शिक्षा अधिकारी, आगूंचा, भीलवाड़ा, राजस्थान 311022

मातृभाषा की महत्ता

"भाषा केवल विचारों की अभिव्यक्ति और सम्प्रेषण का सर्वाधिक सषक्त माध्यम ही नहीं अपितु व्यक्ति के व्यक्तित्व व समाज की पहचान, राष्ट्र का गौरव, आत्म सम्मान और आत्म गौरव की प्रतीक है। मातृभाषा को प्रथम भाषा या पालने की भाषा के नाम से जाना जाता है। जन्म के बाद बच्चा परिवार में प्रथमतः अपने स्वभाव, संस्कार, आचरण एवं व्यवहार में अपनी माँ से ही भाषा को अर्जित एवं आत्मसात् करता है। इसके अतिरिक्ति परिवार के अन्य सदस्यों से सुनकर सतत् दीर्घकालीन अनुकरण प्रक्रिया द्वारा मातृभाषा को अर्जित करता है। इसीलिये माँ को पहली शिक्षिका और परिवार को प्रथम पाठषाला कहा गया है। पारिवारिक परिवेष मातृभाषा को निर्मित और विकसित करता है। मानवीय सम्बन्धों में सम्बोधन, शब्दावली एवं अभिवादन परक शब्द बच्चे में सामाजिक बोध उत्पन्न करते है। मातृभाषा अपनी संरचनात्मक प्रकृति और बहुयोजन मूलक प्रभाव में सहज स्वाभाविक एवं गतिशील होती है। अपनी उच्चारण प्रक्रिया, शब्द सम्पदा, रूप रचना वाक्य विन्यास में बहु विकल्पी होती है। विचार विनियम के स्तर पर सहज सम्प्रेषणीय एवं बोधगम्य होती है।" **–डॉ. उषा सिन्हा**

मातृभाषा अर्थात् माँ की भाषा, अपने घर–आँगन की भाषा, परिवार–पड़ोस की भाषा, गली–मोहल्लों में बतियाने की भाषा जो हमारे दैनिक जीवन में रच–बस जाती है। परस्पर विचारों के

आदान–प्रदान में सहजता का अनुभव कराती है। हमारी अपनी मातृभाषा में क्षेत्रीय शब्दावली का अलग ही आनन्द भी हैं। हम अपने ध्वनि संकेतों का प्रयोग भी बातचीत को बोधगम्य बनाने में सहजता से कर लेते है। मधुर, मीठी, मनमोहक और सीधी–सादी थोड़े में अधिक कह जाने वाली हमारी मातृभाषा की अपनी अलग महत्ता हैं। मातृभाषा का आशय है–''माँ की भाषा'' जो पालने से ही हमें माँ के द्वारा सहज ही सीखने को प्राप्त हो जाती है।

मातृभाषा में किसी दूसरी भाषा का समावेश उपयुक्त नहीं होता। उसकी मधुरता नष्ट हो जाती है। मातृभाषा की महत्ता का मापन करते हुये बांग्लादेश ने तो 21 फरवरी, 1952 को ढाका विश्वविद्यालय ने मातृभाषा को बचाने के लिये एक विशेष आंदोलन का सूत्रपात किया था। युनेस्को द्वारा इसी तिथि को विश्व मातृभाषा दिवस के रूप में घोषित किया गया। शैक्षिक दृष्टि से भी मातृभाषा का विशेष महत्त्व है। यदि बच्चे को अपनी मातृभाषा में शिक्षण दिया जाये तो वह विषय वस्तु को सहजता से आत्मसात् कर सकता है तथा उसके लिये शिक्षण बोधगम्य बन जाता है। बालक द्वारा अर्जित ज्ञान बाद में ठोस व स्थायी होता है। मातृभाषा के द्वारा शिक्षण व्यवस्था नहीं हो पाने से लाखों युवक अपनी ज्ञानराशि को समृद्ध बनाने में असमर्थ रहे है। परीक्षा में भी जो तथ्य अपनी मातृभाषा के माध्यम से सोचकर लिख सकते हैं, अन्य भाषा में उसका अधूरापन रहता है। विज्ञान, राजनीति, सामाजिक विज्ञान सम्बन्धी उच्च कक्षाओं में अंग्रेजी भाषा में होने के कारण विषय सामग्री के आत्मीकरण में कठिनाई उत्पन्न होती है फलस्वरूप प्रतियोगी परिक्षाओं में भी वह पिछड़ जाते है। मातृभाषा शिक्षा को माध्यम बनाकर अध्ययन व अध्यापन को सार्थक एवं सफल बनाया जा सकता है। शिक्षाविद् प्रो. यशपाल ने प्रारम्भिक शिक्षा को मातृभाषा में देने पर विशेष बल दिया है तथा भूदान आंदोलन के सूत्रधार विनोबा भावे ने स्पष्ट रूप से कहा है– ''शिक्षा को सर्वाधिक सार्वजनिक बनाना हो तो वह मातृभाषा में देना चाहिये। इससे उनमें सांस्कृतिक संरक्षण बना रहता है। नैतिक व आध्यात्मिक मूल्य भी सीखे जा सकते है।''

मातृभाषा को अक्षुण्य बनाये रखने में साहित्यकारों का विशेष योगदान सम्भव है। वे अपने साहित्य की कथा वस्तु, परिवेश, काल और समाज के अनुसार भाषा का उपयोग भी करते है। मुंशी प्रेमचंद, फणीश्वर नाथ रेणु, श्री लाल शुक्ल आदि साहित्यकारों ने अपनी साहित्यिक रचनाओं में मातृभाषा का विशेष रूप से प्रयोग किया है। इससे उनका साहित्य अधिक लोकोपयोगी बन गया है एवं सामाजिक परिवर्तन की दिशा में उपयोगी सिद्ध हुआ है। सूचना और प्रसारण के क्षेत्र में भी मातृभाषा के चलन को पोषण प्राप्त हुआ है। कई टीवी चैनल स्थानीय भाषा में कार्यक्रमों एवं समाचारों का प्रसारण कर रहे हैं, इससे मातृभाषा को जीवन्त बनाये रखने में सहायता मिलती है। मातृभाषा के चलन में विदेशी व्यापार, अन्य प्रान्तों में रोजगार, बाहरी लोगों का प्रवेष आदि कारणों से भी अवरोध उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय स्वयं संघ की अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा ने भी प्रस्ताव पारित करते हुये प्रस्तावित किया है कि–''किसी भी व्यक्ति एवं समाज की पहचान का एक महत्त्वपूर्ण घटक तथा उसकी संस्कृति की सजीव संवाहिका मातृभाषा होती है। देश में प्रचलित विभिन्न भाषायें, बोलियाँ, हमारी संस्कृति, उदात्त परम्पराओं, उत्कृष्ट ज्ञान एवं विपुल साहित्य को अक्षुण्य बनाये रखने के साथ ही वैचारिक नवसृजन हेतु परम आवश्यक है।'' प्रतिनिधि सभा का मानना है कि देश की विविध भाषाओं तथा बोलियों के संरक्षण और संवर्द्धन के लिये सरकारों, नीति निर्धारकों और स्वैच्छिक संगठनों सहित समस्त समाज को सभी सम्भव प्रयास करना चाहिय, जिससे हमारी भाषा मातृभाषा बोलियाँ आदि का संरक्षण हो सके। वस्तुतः मातृभाषा सर्वांगीण विकास की आधारषिला है। पाश्चात्य संस्कारों से प्रभावित लोग मातृभाषा से परहेज करने लगे है। उन्हें यह गंवारों की भाषा सी प्रतीत होती है। हमारे चरित्र की नींव मातृभाषा ही से सम्भव है जो मानव मात्र में सुसंस्कारों का समावेश तो करती ही है तथा सांस्कृतिक चेतना के प्रादुर्भाव, राष्ट्रीयता की भावना को विकसित करने में सहयोगी है। हमारे साहित्यकारों ने अपनी साहित्य को समृद्ध करने में मातृभाषा का आश्रय प्राप्त कर अपनी लेखनी को धन्य किया है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द की इन पंक्तियों का स्मरण कर सभी प्रेरित होते है–''निज भाषा उन्नत अहे, सब उन्नति को मूल।''

मातृभाषा की महत्ता को प्रतिपादित करने तथा जन–जन को इसका महत्त्व समझाने के लिये तथा इसकी सुरक्षा हेतु सन्देश प्रसारित करने के लिये अन्तरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस मनाया जाता है। आज भारत ने मातृभाषा के रूप में हिंदी भाषा को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाने लगा है इसीलिये कहा गया है कि हिंदी भी भाषा ही नहीं हमारी मातृभाषा भी है। रविन्द्रनाथ टैगोर ने कहा है–*''वे भाषायें शत्दल कमल की पंखुड़ियों के रूप में और हिंदी उसकी मध्यम मणि है। हिंदी भाषा में हमारी भारतीय संस्कृति एवं धर्म की कड़ियाँ गहरी जुड़ी हुई हैं। यही कारण है कि सन्तों और भक्तों के पद व वाणी हिंदी व मातृभाषा के माध्यम से आज भी घर–घर में बसी है। राष्ट्रीयता, भारतीयता, एकता और अखण्डता हिंदी व मातृभाषा का मूल स्वर है।''*

राष्ट्र निर्माण तथा सामाजिक समरसता के संवर्द्धन में हिंदी ने मातृभाषा के रूप में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। स्वाधीनता व सम्प्रभुता की दिषा में भी यह अग्रगण्य रही है। माखनलाल चतुर्वेदी ने कहा है–*''हिंदी भारत की अमर वाणी है, यह स्वतन्त्रता और सम्प्रभुता की गरिमा है।''* मातृभाषा के रूप में हमें हिंदी को पूर्णतः समर्थन देते हुये इसके हर क्षेत्र में प्रचलन, उपयोग और विकास हेतु प्रयास करना चाहिये। शिक्षा के क्षेत्र में मातृभाषा की उपयोगिता को ध्यान में रखकर इसे शिक्षा का माध्यम बनाया जाये तथा मातृभाषा में उपलब्ध साहित्य को संरक्षित रखते हुये नवसृजन का प्रयास करना चाहिये।

''मातृभाषा एक सामाजिक यथार्थ है जो व्यक्ति को अपनी भाषायी समाज के अनेक सामाजिक सन्दर्भों को जोड़ती है और उसकी सामाजिक अस्मिता का निर्धारण करती है। इसी के आधार पर व्यक्ति अपने समाज और संस्कृति से जुड़ा रहता है क्योंकि मातृभाषा अपनी संस्कृति व संस्कारों की संवाहक होती हैं।'' **–प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी**

यदि शिक्षण को सार्थक, उपयोगी और सहज–सुलभ बनाना है तो उसके लिये मातृभाषा में शिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिये जो न केवल षिक्षण को सरल बनाने में सहयोगी होगी अपितु हमारी मातृ संस्कृति और सांस्कृतिक परम्पराओं को भी अक्षुण्य बनाये रखेगी।

मंथन

हीरे अधिक कीमती हैं या पेड़!

रंजना मिश्रा
कानपुर, उत्तर प्रदेश

मध्यप्रदेश में छतरपुर में 2,15,875 पेड़ों को काटने की तैयारी चल रही है। मध्य प्रदेश का छतरपुर जिला बुंदेलखंड क्षेत्र में आता है, जहां भूमिगत पानी का भयानक संकट है, लेकिन इस जिले में एक प्राकृतिक जंगल पाया जाता है, जिसे बक्सवाहा क्षेत्र कहा जाता है। यह जंगल 364 एकड़ की जमीन में फैला हुआ है, यहां कुल 2,15,875 पेड़ हैं। यह जंगल मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल से 225 किलोमीटर दूर है। पिछले कुछ वर्षों से इस जंगल में एक सर्वे चल रहा था जिसमें ये बात पता चली कि इस जंगल में हीरे का सबसे बड़ा भंडार छुपा हुआ है। अनुमान है कि जंगल की जमीन में तीन करोड़ 40 लाख कैरेट हीरे दबे हो सकते हैं, इसके लिए कंपनी को नीलामी में जंगल की जमीन लीज पर दी जा चुकी है और इस जमीन पर हीरे की खदानों के लिए पेड़ों को काटा जाना है। अब सवाल यह है कि हीरे ज्यादा कीमती हैं या पेड़? इन पेड़ों को बचाने के लिए आसपास के लोगों ने संघर्ष शुरू कर दिया है, लोग चिपको आंदोलन की तर्ज पर यहां पेड़ों से चिपक कर इन्हें बचाने का संकल्प ले रहे हैं और जंगल में पेड़ों पर रक्षा सूत्र भी बांधे जा रहे हैं। इन लोगों का मानना है कि हीरों के लिए जंगल को नष्ट करना सही नहीं होगा और इसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं। बक्सवाहा का यह जंगल लगभग 382 हेक्टेयर से ज्यादा इलाके में फैला है। सरकार ने इस जंगल की

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

जमीन पर हीरा खनन की मंजूरी दी है। इसके बाद अब इस इलाके में पेड़ों को काटने की प्रक्रिया शुरू होनी है। इस बात से आसपास के लोग बहुत नाराज हैं और इसलिए लोग विरोध में जंगल में पहुंचकर पेड़ों को बचाने के प्रयास में लगे हैं। इस जंगल का घनत्व 0.7 है, जिसके कारण यहां सूर्य की किरणें केवल 3 या 4 भाग में ही पड़ती हैं और बाकी का भाग ढका रहता है, जिसके कारण धरती का जलस्तर एक समान बना रहता है और यह जंगल कटने से जलस्तर भी प्रभावित होगा। इस जंगल की खासियत यह है, कि यहां सैकड़ों साल पुराने और दुर्लभ प्रजाति के पेड़ पाए जाते हैं। एक रिपोर्ट का अनुमान है कि इस जंगल में सागौन के 40 हजार पेड़ पाए जाते हैं। इसके अलावा केम, पीपल, तेंदू, जामुन, बहेड़ा और अर्जुन जैसे बहुत से औषधीय पेड़ भी यहां मौजूद हैं, ऐसे में इन पेड़ों की कटाई से किसानों को भी नुकसान होगा और आसपास रहने वाले लोगों की जीविका पर भी इसका असर पड़ेगा। हालांकि इस खबर का व्यवसायिक पहलू यह है कि जैसे ही हीरे की खदानें स्थापित होंगी, ये खदानें पूरे एशिया की सबसे बड़ी हीरे की खदानें बन जाएंगी। अभी भारत में हीरे की खदानें आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश में हैं, अधिकतर हीरे की खदानें मध्यप्रदेश में ही पाई जाती हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार इस माइनिंग प्रोजेक्ट के लिए प्रतिदिन 59 लाख क्यूबिक मीटर पानी की आवश्यकता होगी और इसके लिए पास में मौजूद बरसाती नाले की दिशा बदली जाएगी और इसका पानी इस्तेमाल किया जाएगा। भारत सरकार की सेंट्रल ग्राउंड वॉटर अथॉरिटी का मानना है कि मध्य प्रदेश का छतरपुर जिला पानी के गंभीर संकट से जूझ रहा है इसे देखते हुए इस जिले को सेमी क्रिटिकल की श्रेणी में रखा गया है। इस श्रेणी में वो जिले होते हैं, जहां पानी की समस्या अधिक होती है, यानी पानी के संकट से जूझते छतरपुर में इस जंगल को खत्म करना सही नहीं होगा। इसी साल 29 अप्रैल को मध्यप्रदेश के रायसेन में एक किसान ने सागौन के दो पेड़ काट दिए थे, जब यह सूचना वन विभाग को मिली तो उसने किसान पर कार्यवाही की और दो पेड़ काटने के लिए एक करोड़ बीस लाख रुपए का जुर्माना उस किसान पर लगाया, तब वन विभाग का यह कहना था कि सागौन के एक

पेड़ की उम्र 50 वर्ष होती है और इस उम्र में वो 60 लाख रुपए का फायदा करता है। अब सवाल यह है कि इस जंगल में सागौन के 40 हजार पेड़ काटे जाएंगे, तो क्या इन पेड़ों को काटने के लिए विभाग प्रति पेड़ 60 लाख रुपए के हिसाब से 24 हजार करोड़ रुपए का जुर्माना भरेगा ? हमारे देश में वृक्षों को लेकर इस तरह के कई दोहरे मापदंड हैं, जिन्हें दूर करने की आवश्यकता है।

भारत में लगभग 6.5 लाख गांव हैं, जिनमें से लगभग 1.70 लाख गांव जंगल के किनारे बसे हैं, यानी गांव के करोड़ों लोगों की आजीविका इन्हीं जंगलों पर निर्भर करती है जैसे लकड़ी इंधन चारा औषधियां और फल इत्यादि जंगल से ही मिलते हैं लेकिन छतरपुर में जिन 2 लाख 15 हजार पेड़ों पर काटे जाने का खतरा मंडरा रहा है, वह बहुत ही खतरनाक है। वैज्ञानिकों के अनुसार हरे–भरे जंगल हमारी पृथ्वी के फेफड़े हैं, इनसे हमें ऑक्सीजन प्राप्त होती है और ऑक्सीजन की जरूरत को हमने कोरोना संक्रमण में सबसे ज्यादा महसूस किया है, इन परिस्थितियों में निर्जीव हीरे के लिए सजीव पेड़ों को शहीद करना कहां तक ठीक होगा? प्राकृतिक रूप से बने जंगल को हटाने के बाद, यदि वृक्षारोपण का वायदा भी किया जाए तो ऐसा जंगल खड़ा होने में कई साल लग जाएंगे, इसीलिए आस–पास के गांव वाले ही नहीं, आसपास के जिलों के लोग भी यहां पहुंचकर पोस्टर–बैनर लेकर पेड़ों को बचाने में जुटे हैं। एक जमाने में उत्तराखंड में जंगलों को बचाने के लिए चिपको मूवमेंट की शुरुआत हुई थी और आज बक्सवाहा के जंगलों में तमाम संगठन विरोध में उतर आए हैं।

यदि पेड़ और हीरे में से एक को चुनने को कहा जाए तो कोई भी समझदार व्यक्ति हीरा नहीं बल्कि पेड़ ही चुनेगा, क्योंकि पेड़ हमारे जीवन दायक हैं, ऑक्सीजन देने वाले हैं, हजारों गरीब और आदिवासियों को पेड़ और जंगल रोजगार देते हैं। हम लगभग पिछले डेढ़ दो वर्षों से कोरोना की मार झेल रहे हैं और हमने लगातार प्रकृति का भयावह रूप देखा है, इसलिए चाहिए कि हम प्रकृति का सदैव संरक्षण करें। हीरे से अधिक प्रकृति मूल्यवान है। पेड़–पौधे, जंगल, पहाड़, नदियां, तालाब आदि का संरक्षण और साफ–सुथरा रखना ही हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए।

एक पेड़ प्रतिदिन चार लोगों को मिलने वाली ऑक्सीजन वातावरण में छोड़ता है। एक एकड़ जमीन पर लगे पेड़ 5 टन कार्बन डाइऑक्साइड सोखने की क्षमता रखते हैं। पेड़ हमें गर्मी से भी बचाते हैं, एक पेड़ 1 से 3 डिग्री सेल्सियस तक तापमान कम रखता है। पेड़ हमें बाढ़ से भी बचाते हैं, ये बारिश का काफी पानी सोख लेते हैं, जिससे ये पानी नदियों में नहीं जाता है। पेड़ तूफानों को भी कमजोर करते हैं, पेड़ों की वजह से तूफानी हवाएं धीमी पड़ जाती हैं। पेड़ों से किसी प्रॉपर्टी की कीमत भी बढ़ जाती है, एक स्टडी के मुताबिक जो घर हरे–भरे पेड़ों के पास होते हैं, उनकी कीमत ज्यादा होती है। औषधीय पेड़ बीमारी के उपचार में वरदान साबित होते हैं। आयुर्वेद में पेड़ों को मेडिसिन माना गया है, किंतु हमने समय के साथ–साथ पेड़ों के इन अमूल्य योगदानों को भुला दिया है और इनके आगे हमें हीरे की चमक ज्यादा आकर्षित करती है। 5 मई को पर्यावरण दिवस पर बहुत से राजनेताओं ने पौधे लगाते हुए अपने फोटो खिंचवाए, लेकिन पर्यावरण के प्रति संवेदना की गवाही कुछ दिनों बाद बक्सवाहा के जंगल देंगे, जब ये सपाट मैदान बन चुके होंगे। हमेशा से विकास के नाम पर जंगलों को काटा जाता रहा है और यह दलील दी जाती रही है कि आपको विकास चाहिए तो जंगलों की बलि देनी होगी। अब सवाल यह है कि क्या हीरा खनन को भी विकास की परिभाषा के दायरे में रखना सही होगा?

आज से 15 सौ वर्ष पूर्व लेटिन अमेरिका के पेरू देश की नाजका सभ्यता अपने सैकड़ों वर्षो के इतिहास के बाद अचानक गायब हो गई थी। ब्रिटेन के कैंब्रिज यूनिवर्सिटी के अध्ययन के मुताबिक इस सभ्यता ने अपने जंगल को काटकर कपास और मक्के की खेती शुरू कर दी थी, जिसकी वजह से वहां के रेगिस्तानी इलाकों का इकोसिस्टम नष्ट हो गया, इसी कारण वहां बाढ़ आई और सभ्यता पूरी तरह नष्ट हो गई। जंगल को काटना इस सभ्यता को बहुत महंगा साबित हुआ, लेकिन आज लोग इस बात को नहीं समझ रहे हैं और वे वही गलती कर रहे हैं जो नाजका सभ्यता के दौरान हुई थी।

मंथन

राष्ट्रीयता और सामाजिक चेतना के कवि दिनकर

डॉ. उर्मिला शर्मा
सहायक प्राध्यापक, अन्नदा महाविद्यालय हजारीबाग, झारखण्ड

राष्ट्रीयता की परिधि अत्यंत व्यापक होती है। राष्ट्रीय कविता के अंतर्गत देश को एक इकाई मानकर काव्य–रचना की जाती है। हिन्दी कविता में राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति का एक दीर्घ और समृद्ध इतिहास है।

गिरा अरथ जल बीचि सम
कहियत भिन्न न भिन्न।

ठीक ही कहा गया है कि जिस प्रकार शब्द और अर्थ भिन्न होते हुए भी अभिन्न है, उसी प्रकार राष्ट्र और राष्ट्रीयता परस्पर अमिट होते हैं। राष्ट्रीयता मनुष्य के अंतरतम की श्रेष्ठतम भावना है। इक्कीसवीं सदी का दूसरा दशक मुख्य रूप से राष्ट्रवादी बहसों का रहा है। हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय भावना का बीजवपन सच्चे अर्थों में भारतेंदु–काल में हुआ। द्विवेदी युग में राष्ट्रीय भावना सशक्त और व्यापक हुई। साहित्य में राष्ट्रीयता की मशाल लेकर चलनेवाले कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, मैथिलीशरण गुप्त तथा सुभद्राकुमारी चौहान आदि उल्लेखनीय हैं। इनके स्वर में जो हुंकार है वही आगे चलकर दिनकर के काव्य में गूँजती है। दिनकर का काव्य इस काव्य प्रसाद का स्वर्ण–कलश है।

दिनकर के क्रांतिकारी व्यक्तित्व निर्माण में बिहार तथा बंगाल के युवा वर्ग के द्वारा निर्मित वातावरण का हाथ रहा है। उन्होंने स्वयं श्चक्रवालश की भूमिका में लिखा है– ***'राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जन्मी। उसने बाहर से आकर मुझे आक्रांत किया है।'*** [1] दिनकर

के कवि व्यक्तित्व का निर्माण करनेवाले तीन विधायक तत्व हैं– भारतीय परम्परा, सामयिक परिस्थितियों की मांग व छायावादी कोमल अनुभूतियां। उनके अनुसार भारत एक भूखण्ड मात्र न होकर भारतीयता से पगा हुआ एक विचारधारा है–

'भारत नहीं स्थान का वाचक, गुण विशेष नर का है,
एक देश का नहीं, शील यह भूमंडल भर का है।
जहां कहीं एकता अखंडित, जहां प्रेम का स्वर है,
देश– देश में वहां खड़ा, भारत जीवित भास्वर है।'

दिनकर की राष्ट्रीयता 'रश्मिरथी', 'कुरुक्षेत्र' एवं 'परशुराम की प्रतीक्षा' आदि में एकाएक उत्पन्न न होकर उनमें भारतीयता तथा मनुष्यता के विराट स्वप्न है। उनके काव्य में राष्ट्रीयता के तीन पहलू विद्यमान हैं। प्रथम के अंतर्गत वे कवितायें हैं, जिनमें तीव्र देशप्रेम की भावना के साथ सामयिक प्रेरणा निहित है। द्वितीय के भीतर आनेवाली रचनाओं में कवि की इतिहास दृष्टि प्रधान है, अतीत के गौरव गान और जीवन मूल्यों के प्रति आस्था के माध्यम से देशप्रेम की भावना व्यक्त की गई है। तीसरे के अंतर्गत सामयिक प्रेरणा ही मुख्य रहा है। उनकी रचनाओं को दो भागों में बांट सकते हैं। प्रथम प्रकार के रचनाओं में राष्ट्रीय भावना समेत क्रांति का स्वर है। साथ ही दलित एवं पीड़ित मानवता के प्रति सहज अनुभूति व्यक्त हुआ है। दूसरी श्रेणी की कृतियों में विश्व कल्याण की उदात्त भावना प्रकट हुई है। उन्होंने भारत के राष्ट्रीय व्यक्तित्व निर्माण हेतु भारतीय संस्कृति के गरिमामय राष्ट्रीय पात्रों को तराशा है। इनके व्यक्तित्व के विषय में डॉ मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है कि ***'बिहार प्रान्त की पावन धरती में सोए हुए शक्तिकण से सम्भूत रामधारी सिंह दिनकर की काव्यात्मा ने इतिहास को अंगड़ाई लेने को विवश कर दिया। राष्ट्रीय ओज के इस अमर गायक की लेखनी ने भारतीय पुरुष को ऐसे ललकारा की कुरुक्षेत्र के युद्व का धर्म धारण करने की दिशा में भारतीय महारथी प्रवृत्त होने को विवश हो गए। युद्ध एवं शांति की दिशा में मौलिक चिंतन को काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत करने का उन्होंने सफल प्रयास किया।'***

दिनकर के काव्य में पराधीनता के वातावरण में शोषण एवं अत्याचारों की प्रतिक्रिया का शक्तिशाली रूप दिखाई पड़ता है। उसमें हिंसात्मक प्रतिक्रिया के साथ–साथ अहिंसा तथा विश्वप्रेम का भी उद्घोष हुआ है। जिसमें आगे चलकर राष्ट्रीयता, अंतरराष्ट्रीयता, विश्व बंधुत्व व मानवतावाद का स्वर मुखरित हुआ है। देश पर बाहरी

आक्रमणों द्वारा उत्पन्न संकटकाल में उन्होंने ओजस्वी रचनाएँ लिखकर देशवासियों में एक नवीन जोश एवं नवचेतना जागृत की। *'दिनकर की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना समग्रता में दिखाई देती है। क्योंकि वह पहले भारतीयता के कवि हैं जो बाद में राष्ट्रीयता के रूप में पहचान बन कर प्रवृति के रूप में उभरती है। वह राष्ट्रीयता की आड़ में भारतीय नहीं, उनकी भारतीयता राष्ट्रीयता के रूप में अपनी पहचान बनाती है। इसलिये उन्होंने उन सत्ताधीशों के खिलाफ बेबाक होकर लिखा है, जो राष्ट्रीयता के रंग चोले में अभारतीयता को ढके रहते हैं।'* [2] दिनकर की सर्वप्रथम प्रकाशित रचना 'बारदोली विजय' हैं जिसमें उनकी राष्ट्रीय भावना बीज रूप में विद्यमान हैं। 'प्रणभंग' खण्डकाव्य में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। इसके अंतर्गत महाभारत की कथा के माध्यम से कहा गया है कि पराधीनता का अपमान भरा जीवन जीना कलंक है। युद्ध से पूर्व जब युधिष्ठिर के मन में धर्म–अधर्म की दुविधा चलती है तब अर्जुन व भीम आक्रोश में बोल पड़ते हैं–

'अपना अनादर देख कर भी आज हम जीते रहे,
चुपचाप कायर से गरल का घूंट यदि पीते रहे,
वो वीर जीवन का कहाँ रहता हमारा तत्व है,
इससे प्रकट होता यही हममें न अब पुरुषार्थ है।'

कवि की दूसरी रचना 'रेणुका' 33 राष्ट्रीय कविताओं का संकलन है जिसमें अतीत गौरवगान तथा युगीन समस्याओं को उजागर किया गया है। 'उनकी रेणुका, हुंकार, सामधेनी आदि कवितायें स्वतन्त्रता सेनानियों के लिए बड़ी प्रेरक सिद्ध हुई। इसी रूप में उन्हें बहुत अधिक लोकप्रियता मिली। ...राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रीय स्वाभिमान का सबसे ज्वलन्त रूप प्रकट हुआ है उनकी सुविख्यात लम्बी कविता 'परशुराम की प्रतीक्षा' में युद्ध और शान्ति की समस्या का द्वंद तो 'कुरुक्षेत्र' में व्यक्त होकर सुप्रतिष्ठित हो ही चुका है।' [3] 'हुंकार' कविता में कवि तूफान का आह्वान करता दिखाई देता है। इसमें सर्वत्र विद्रोह और बलिदान का स्वर मुखरित हुआ है। 1943 में प्रकाशित 'कुरुक्षेत्र' में कवि का राष्ट्रवाद और मानवतावादी दृष्टिकोण प्रकट हुआ है। 'कुरुक्षेत्र अपने समय और समाज के प्रति जागृति का सन्देश देनेवाला समन्वय की भूमि पर अवस्थित काव्य है जहां युद्ध की अनिवार्यता, धर्म एवं शांति के मंगल की शुभकामना सन्निहित है। राष्ट्रकवि दिनकर की रचनाएं राष्ट्रीय भावनाओं से ओत–प्रोत है। 'सामधेनी' का प्रकाशन 1946 में हुआ था।... समग्र देश का प्रतिशोध और हिंसा का स्वर इसमें

व्यक्त हुआ है। इस कृति का मूल स्वर क्रांति ही है।'[4] 'रेणुका' से 'हुंकार' तक के सफर में दिनकर का स्वर स्थिर होते चले गया है। 'हुंकार' में उन्होंने अपनी कविताओं को स्वतंत्रता के यज्ञ में आहुति के रूप में समर्पित किया है–

'रण की घड़ी जलन की बेला, लो मैं भी कुछ गाऊंगा।
सुलग रही यदि शिखा यज्ञ की, अपना हवन चढ़ाऊंगा।

.....

नए प्रात के अरुण! तिमिर– उर में सन्धान करो।
युग के मुख शैल जागो हुंकारों, कुछ गान करो।। [5]

दिनकर का कवि हृदय किसानों, श्रमिकों, मां–बहनों की दीन–हीन विवश स्थिति से भी त्रस्त होकर *राजनैतिक एवं आर्थिक क्रांति के लिए चीख उठता है–*

'वे भी यही, दूध से जो अपने स्वानों को नहलाते हैं।
वे बच्चे भी यही, कब्र में दूध–दूध चिल्लाते हैं।' [6]

दिनकर की क्रांति की मांग केवल राजनीतिक असन्तोष न होकर आर्थिक शोषण गुलामी व अत्याचार को भस्म कर देने वाले आग की मांग करता है। उसकी लेखनी वीरों की जयगान में ही अपना गौरव समझती है। कवि की दृष्टि में सारे शोषण एवं अभावों का मूल पूंजीवाद है जिसपर वह इस प्रकार प्रहार करता है–

'धन–पिशाच के कृषक मेघ मैं नाच रही पशुता मतवाली।
आगन्तुक पीते जाते हैं, दोनो के शोणित की प्याली।।' [7]

दिनकर के लिए साध्य प्रधान है, साधन गौण। अतः उन्होंने स्वाधीनता प्राप्ति हेतु हिंसा के मार्ग को भी अनुचित माना। प्रलयकारी शंकर के माध्यम से उन्होंने युवाओं की रौद्र भावनाओं को जगाकर हिंसा की ओर अग्रसर किया–

लेना अनल किरीट भाल ओ आशिक होने वाले
कालकूट पहले पी लेना सुधा बीज बोने वाले।

वे प्राचीन उदात्त जीवन–मूल्यों, आदर्शों, त्याग, तपस्या, करुणा, क्षमा, अहिंसा को व्यक्ति के लिए गुण मानते हैं, किंतु समष्टि के लिए विशेषकर ऐसी स्थिति में जब देश का प्रश्न हो, विदेशी शासक दमनात्मक कार्यवाही कर रहा हो, वह इन्हें दोष और अवगुण मानता है। वे गाँधीजी की शांतिवादी नीति और जीवन दर्शन को 'अजा–धर्म' कहकर निंदा करते हैं। वे विस्फोट करने वाली क्रांति का आह्वान

करते हैं। वीरों के प्रति वे श्रद्धानवत हैं। राष्ट्रप्रेम ने उन्हें वीरपूजक बना दिया है–

जिस युग में, जिस देश में जाती या कुल में
वर्तमान में या भविष्य गह्वर में
पुरुष विक्रमी हो, वह जहां कहीं भी
है नमस्य मेरा वह सीस–मुकुट सा।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारतीय जनता की तरह ही कवि ने राष्ट्र और जनतंत्र को लेकर सपनें पाले थे। किंतु सत्ताधारियों की विलास वृत्ति व स्वार्थपरता और संकुचित राष्ट्रीयता को देख स्वप्न भंग हो गया। अछूतोद्धार के प्रज्वलित प्रश्न से 'बोधिसत्व' की रचना हुई है। साम्प्रदायिक समस्या के संदर्भ में 'तकदीर का बंटवारा' और 'कस्मैदेवाय' कटु आलोचना से पूर्ण रचना है। 'मेघरन्ध्र' में बजी रागिनी, अबीसीनिया पर इटली के आक्रमण की कविता है। द्वितीय विश्वयुद्ध की समस्या पर 'कुरुक्षेत्र' के प्रबंध लिखा गया है। चीनी आक्रमण जिसने भारत के मस्तक को विश्व में झुका दिया है, के प्रश्न को लेकर 'परशुराम की प्रतीक्षा' का सृजन हुआ है। ये रचनायें कवि की व्यापक राजनीतिक निपुणता की परिचायक है। इन कविताओं में सारा वैषम्य, आर्थिक शोषण एवं राजनीतिक हलचलों की धड़कन सुनाई दे जाती है।' [8] दिनकर के चिंतन में न केवल राष्ट्र बल्कि समस्त मानवता समाहित है। उनमें राष्ट्र के लिए जितनी आत्मबलिदानी भावना है, उतनी ही तीव्र विश्वबंधुत्व की उदात्त चेतना भी है। उनकी इसी मानवतावादी व्यापक राष्ट्र चेतना को देख डॉ. रामदरश मिश्र ने कहा है– ***'दिनकर की राष्ट्रीयता, अंतरराष्ट्रीयता, मानवता, भावनाशीलता, वैचारिकता का अद्भुत समन्वय है।'*** [9]

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि दिनकर की राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत कविताओं का मूल स्वर है– विद्रोह, विप्लव और क्रांति। किंतु उनकी राष्ट्रीयता का एक अन्य पहलू भी है, जो उसे जटिल बना देता है और वह पहलू है आध्यात्मिक आदर्शो का, सत्य और अहिंसा का उनपर गम्भीर प्रभाव। एक ओर वह क्रांति का प्रशस्ति गान करते हैं और दूसरी ओर अहिंसा और सत्य का स्तवन करते हैं। उनके काव्य 'कुरुक्षेत्र' के अंत में इन्हीं आदर्शो की प्रतिष्ठा है। यह प्रश्न उठता है कि उनकी राष्ट्रीय चेतना में अंतर्विरोध दिखता है। चाहे सामयिकता का प्रभाव हो या स्प्ष्ट चिंतन का अभाव हो या फिर स्थिरता की कमी हो, किन्तु यह अंतर्विरोध उनके काव्य में दिखता तो

है। एक ओर वे भविष्य में अहिंसा की स्थापना का प्रयास करने की बात कहते हैं तो दूसरी ओर वर्तमान में रक्तपात करने, विध्वंस और विनाश की आंधी लाने की बात कहते है जिसे अंतर्विरोधी सिद्धांत कहा जा सकता है।

आधुनिक हिंदी साहित्य में दिनकर की राष्ट्रीय चेतना व संस्कृति–बोध के ओजस्वी कवि हैं। उन्होंने जीवन व जगत के समस्त आयामों पर गम्भीर विचार किया है। अपनी लेखनी के माध्यम से उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं दार्शनिक पहलुयों का सूक्ष्म विवेचन किया है। उनके साहित्य पर समाज का गहरा छाप है। उन्होंने समाज को वैसा साहित्य प्रदान किया है जहां से मुक्तिद्वार खुलता है। उन्होंने देश की स्वतंत्रता हेतु युवा शक्ति को अपने काव्योद्गार से जगाया। वे मानव–मूल्यों के समग्र सन्दर्भो पर लिखते रहें। कई कालजयी कृतियों के श्रेष्ठ रचनाकार के रूप में दिनकर अपनी सृजनशीलता के कारण हिंदी साहित्येतिहास में हिमालय की तरह अचल हैं। दिनकर की कवितायें पढ़कर राष्ट्रीयता को भारतीयता के रूप में लाने की आवश्यकता है। वर्तमान में राष्ट्रीयता का दम्भ भरनेवाले अपनी क्षुद्र मानसिकता के कारण हमारी सांस्कृतिक इतिहास को कलंकित ही कर रहे हैं। आज देश को दिनकर की राष्ट्रीयता को समझना नितांत आवश्यक है जिनकी रचनायें श्वसुधैव कुटुम्बकमश एवं मानवतावाद को स्पर्श करती है।

संदर्भ :

1. दिनकर, चक्रवाल, भूमिका, पृ.–33
2. amarujala.com, दिनकर की कवितायें.. शैलेंद्र कुमार शुक्ल, 24 अप्रैल, 2019
3. दिनकर, रश्मिरथी, लोकभारती प्रकाशन, पृ.–04
4. apnimaati.com, दिनकर के काव्य में राष्ट्रीयता, सन्ध्या गैरोला, अंक–26, अक्टूबर – 2017
5. दिनकर, हुंकार (आमुख), पृ.–23
6. दिनकर, हुंकार (हाहाकार), पृ.–23
7. दिनकर, रेणुका, पृ.–32
8. hindijournal.com, July, 2017, pg–67
9. हिंदी कविता : तीन दशक, डॉ. रामदरश मिश्र, पृ.–69

संवाद

हिंदी पढ़ाते हुए मैं मातृभूमि के प्रति कर्तव्य का निर्वहन कर रही हूँ : हंसादीप

हंसादीप जी कनाडा के यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो में हिंदी अध्यापन से जुडी हैं। आज हिंदी जगत में हंसादीप जी का सृजनात्मक हिंदी लेखन विशेष रूप से पहचान बना रहा है। हंसादीप की अनेक कहानियां, डायरी और संस्मरण हिंदी की प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित हो रही हैं। आपकी कहानी पाठक बहुत पसंद कर रहे हैं तभी तो इनकी कहानियों का पंजाबी, गुजराती,मराठी भाषों में अनुवाद हुआ है। हंसादीप के तीन कहानी संग्रह– चश्मे अपने–अपने, प्रवास में आसपास, शत प्रतिशत तथा दो उपन्यास– कुबेर और बंद मुट्ठी प्रकाशित हो चुके हैं। और नया उपन्यास 'केसरिया बालम' प्रकाशन के क्रम में आ चुका है और मातृभूमि नामक पत्रिका में धारावाहिक रूप में छपने लगा है। हंसादीप जी ने अंग्रेजी फिल्मों के अनुवाद भी किए हैं।

अपनी कहानियों में हंसादीप जी ने भारतीय परिवेश और प्रवासी जीवन का ताना–बाना बहुत ही बारीकी से बुना है। लेखिका जहां भारतीयता से जुडी हैं तो जहाँ वे निवास कर रही हैं वहां का परिवेश, वातावरण,दैनिक–चर्या को कथा से जोड़ा है और बहुत ही संयमित रचनाएँ पाठकों को दी हैं जो आज हिंदी में चर्चित भी हो रही हैं। आपकी कहानियों में सामाजिक सरोकारों का दायरा काफी विस्तृत है उनके पात्र रोजमर्रा की जिन्दगी से जुड़े हैं तभी कहानी में रोचकता और पठनीयता का समावेश हो जाता है। हंसा जी का कथा सृजन के बारे में मानना है कि ***"कथा संघर्ष से शुरू होती है, विसंगतियों का पर्दाफाश करती है और सकारात्मकता के साथ अंत होती है।"*** *हाल ही में प्रकाशित 'शत–प्रतिशत' संग्रह शीर्षक कहानी बाल शोषण के संवेदनात्मक पक्ष को पाठकों के सामने रखती है. जिसका मुख्य पात्र साशा के मानसिक अंतर्द्वंद का सूक्ष्म विश्लेषण कर लेखिका ने पिता की क्रूरताओं से उपजी अपराधी मानसिकता को फौस्टर माता–पिता कीथ व जोएना के प्रेम ने और फिर लीसा की निकटता से साशा के हृदय परिवर्तन को दिखाकर समाज को सीख देकर रचनात्मक अंत किया है।*

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

'बंद मुट्ठी' उपन्यास बहुत ही रोचक कथा के साथ सामने आता है। इसमें लेखिका ने मातृत्व के द्वन्द, परिवार की पूर्णता को सभी पक्षों के साथ बहुत ही सहज अंदाज में प्रस्तुत किया है। कथा का प्रवाह इतना सहज है कि पाठक उस प्रवाह से बाहर नहीं निकल पाता .भाषा और भाव का सम्मिश्रण कथा की रोचकता को बढ़ते हैं। 'कुबेर' उपन्यास में हंसादीप जी ने कथा में मानवीय रिश्तों के भावनात्मक पहलुओं के साथ व्यवसायिक–पक्षों को भी प्रभावी तरीके से अभिव्यक्त किया है। धनु का जीवन संघर्ष घर से भागना, ढाबे पर काम करना, जीवन–ज्योत एनजीओ जाना, धनु से डी.पी. बनना, मैरी बहन का मिलना, नैन्सी से प्रेम और बिछोह, डी.पी. सर उर्फ कुबेर बनाने में जो कथात्मकता का संयोजन किया है, वह अद्‌भुत है और चमत्कृत करता है। कहीं भी बनावटीपन नहीं है। कथा जिस रफ्तार से शुरू होती है, उसी रफ्तार से चली जाती है। गरीब और बेसहारा बच्चों के प्रति सहानुभूति उनके कार्यक्षेत्र और दक्षता को उनके गंतव्य तक पहुंचाता है।

हंसादीप जी आपका हिंदी–लेखन के प्रति लगाव कैसे उत्पन्न हुआ और इसमें परिवार की क्या भूमिका है ?

हंसादीप : धन्यवाद दीपक जी, आपके साथ संवाद प्रारंभ करना मेरा सौभाग्य है। परिवार व हिंदी–लेखन दोनों ही जीवन के दो अंग–से हैं। ऐसे स्तंभ हैं ये दोनों जो मजबूत नींव भी देते हैं और अंधेरों में लाइट हाउस की तरह रौशनी भी देते हैं। आदिवासी बहुल क्षेत्र मेघनगर, जिला झाबुआ, मध्यप्रदेश में जन्म लेकर पली–बढ़ी मैं बचपन से ही आसपास के माहौल से आंदोलित होती रही। एक ओर शोषण, भूख और गरीबी से त्रस्त आदिवासी भील थे तो दूसरी ओर परंपराओं से जूझते, विवशताओं से लड़ते, एक ओढ़ी हुई जिंदगी जीते हुए मध्यमवर्गीय परिवार थे। हर किसी का अपना संघर्ष था। रोटी–कपड़ा–मकान के लिये जूझते आसपास के लोग मन को दुरूखी करते थे। मालवा की मिट्टी और मेघनगर का पानी संवेदित लेखनी को सींचते रहे। हालांकि ठौर–ठिकाने बदलते रहे। एक गाँव से दूसरे गाँव, एक राज्य से दूसरे राज्य यहाँ तक कि एक देश से दूसरे देश घर बसाती गयी मैं। शहरों और देशों का बदलता परिवेश कहानियों के कथानक को विविधता देता रहा और रचनाओं को आकार मिलता रहा। अपने जीवनसाथी (धर्मपाल महेंद्र जैन) के कवि और व्यंग्यकार वाले व्यक्तित्व ने इसे भरपूर उर्वरक ऊर्जा दी। आए दिन आपस में

डॉ. हंसादीप

मेघनगर (जिला झाबुआ, मध्यप्रदेश) में जन्म। हिंदी में पीएच.डी। यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो में लेक्चरार के पद पर कार्यरत। न्यूयॉर्क, अमेरिका की कुछ संस्थाओं में हिंदी शिक्षण, यॉर्क विश्वविद्यालय टोरंटो में हिंदी कोर्स डायरेक्टर। भारत में भोपाल विश्वविद्यालय और विक्रम विश्वविद्यालय के महाविद्यालयों में सहायक प्राध्यापक। उपन्यास– बंद मुट्ठी, कुबेर, केसरिया बालम। 'बंद मुट्ठी' गुजराती भाषा में अनूदित। कहानी संग्रह– चश्मे अपने–अपने, प्रवास में आसपास, शत प्रतिशत, उम्र के शिखर पर खड़े लोग। सात साझा कहानी संग्रह। कहानियाँ मराठी, पंजाबी व अंग्रेजी में अनूदित। संपादन– कथा पाठ में आज ऑडियो पत्रिका का संपादन एवं कथा पाठ। पंजाबी में अनुवादित कहानी संग्रह– पूरन विराम तों पहिलां। भारत में आकाशवाणी से कई कहानियों व नाटकों का प्रसारण। कई अंग्रेजी फिल्मों के लिए हिंदी में सब–टाइटल्स का अनुवाद। कैनेडियन विश्वविद्यालयों में हिंदी छात्रों के लिए अंग्रेजी–हिंदी में पाठ्य–पुस्तकों के कई संस्करण प्रकाशित। सुप्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में रचनाएं निरंतर प्रकाशित।

संपर्क : 1512-17 Anndale Drive, North York,
Toronto, ON – M2N2W7, Canada 001 647 213 1817
hansadeep8@gmail.com

रचनाएँ सुनकर–सुनाकर हम दोनों के लेखन को एक स्थायी पहला श्रोता मिल गया था। यों आपसी तालमेल से गृहस्थी आगे बढ़ती रही, लेखन बढ़ता रहा और "निंदक नियरे राखिए" को सार्थक करते हुए एक दूसरे की कमियों को महसूस कर रचनाएँ बेहतर करने की कोशिशें जारी रहीं। हालांकि लेखन कभी पूर्णकालिक नहीं रहा, कई बार तो महीनों और सालों तक अपनी रोजी–रोटी–घर–गृहस्थी के चलते विराम देना पड़ा। सबसे अच्छी बात तो यह है कि विराम के चलते भी कलम तो चल ही जाती थी बस रचना पूर्णता को प्राप्त नहीं कर पाती थी। परिवार के साथ कदम से कदम मिलाकर चलते हुए, अलग–अलग देशों की धरती ने भी पाला–पोसा है लेखन को, विविधता दी है और नये आयाम दिए हैं। विदेश में मेरा पहला पड़ाव अमेरिका था। 1993 से 1998 तक, मैं न्यूयॉर्क शहर में रही। न्यूयॉर्क शहर ने मुझे बहुत कुछ दिया, विदेश में बसने का साहस और मुश्किलों से टकराने का हौसला। उस शहर की मैं कर्जदार हूँ जिसने मुझे अपनी ताकतको पहचानने में बहुत मदद की। वहाँ की धरती ने मुझे चुनौतियों के साथ अपनापन दिया। वह प्यार मेरे दिल में कुछ इस तरह अंकित है कि इस शहर का नाम सुनते ही मुझे पहली बार विदेश में कदम रखने की अनुभूति आज भी वैसे ही होती है जैसे तब हुई थी। न्यूयॉर्क शहर की भव्यता ने मुझ जैसी हिन्दी प्रेमी को एक जगह दी और आगे के लिये एक ठोस आधार दिया। मेरा उपन्यास कुबेर अमेरिकी जीवन और वहाँ संघर्षरत परोपकारी लोगों पर आधारित है। यही अनुभव यहाँ यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो में काम करते हुए भी मुझे प्रेरित करता है।

भारतीयता से गहन रूप से जुड़ी हुई थी मैं मगर अमेरिका और कैनेडा जैसे देशों में रहकर, पूरब और पश्चिम के अंतर को महसूसते हुए यह भी देखा कि देश कोई भी हो, इंसान तो एक वैश्विक मन लिये होता है, विशालता की प्रतिमूर्ति, जो कहीं भी रहे जननी के गौरव की अमिट छाप मन से हटा नहीं पाता। इसी के साथ नयी धरती को भी वह उतना ही सम्मान देता है। यही वजह है कि लेखनी आज भी किसी भी परिदृश्य को लिये हो पर अपनी मिट्टी की छाप तो छोड़ ही देती है कागज पर। सही मायने में लिखना तो अब शुरू हुआ है, जब अपनी जिम्मेदारियों का बोझ कम हुआ है। अब कलम चलती है तो बस चलती रहने को चलती है क्योंकि रोटी–कपड़ा और मकान की चिंता से मुक्ति मिली है। मुझे लगता है कि हर कलाकार

के साथ ऐसा ही होता है जब वह अपनी कला पर पूरा फोकस कर पाता है, तभी वह कुछ दे पाता है जो देना चाहता है। इसीलिये मैं अपने मित्रों से कहती हूँ कि मेरी लेखनी शैशवकाल से अब किशोरावस्था की ओर कदम रखते हुए अनवरत आगे बढ़ने की कोशिश कर रही है। बहुत कुछ सीखना, बहुत कुछ पढ़ना और पढ़ाना, सब कुछ ताल से ताल मिलकर चले तो ही लेखनी में परिपक्वता आ सकती है। इसके लिये प्रयास जारी हैं।

आप विदेश में रहकर हिंदी के अध्ययन–अध्यापन के साथ–साथ साहित्य सृजन भी कर रही हैं। हिंदी लेखन के लिए प्रोत्साहित करने वाली परिस्थितियों की जानकारी दीजिए।

हंसादीप : दीपक जी, अगर मैं कहूँ कि मेरा आज तक का संपूर्ण जीवन ही हिंदीमयी रहा तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। बचपन से शिक्षकों ने मेरे लिखे प्रश्नों के उत्तरों को, प्रतियोगिताओं में लिखे निबंधों को बेहद सराहा, मुझे लिखते रहने के लिये बढ़ावा दिया। मेरी पीएच.डी. थीसिस के परीक्षक ने एक ही बात कही थी मुझसे कि– "मैं आपकी भाषा से बहुत प्रभावित हुआ हूँ।" उनके ये शब्द मुझे बहुत ऊर्जा दे गए और आज भी देते हैं। हिंदी विषय मेरा पैशन ही नहीं, प्रोफेशन भी रहा। भारत में मध्यप्रदेश के विदिशा, ब्यावरा, राजगढ़ (ब्यावरा), और धार महाविद्यालयों में लगभग ग्यारह वर्षों तक स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं में हिंदी का अध्यापन करने के बाद न्यूयॉर्क शहर की कुछ संस्थाओं में हिंदी अध्यापन किया और उसके बाद टोरंटो, कैनेडा की यॉर्क यूनिवर्सिटी में हिंदी कोर्स डायरेक्टर के रूप में तथा 2004 से यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो में हिंदी पढ़ा रही हूँ। हिंदी अध्यापन के कारण देश छोड़कर विदेश में बसने का मेरा निर्णय कभी अपराधी भाव महसूस नहीं करने देता, क्योंकि मुझे लगता है कि मैं अपनी भाषा को पढ़ाते हुए मातृभूमि के प्रति अपना कर्तव्य पूरा कर रही हूँ। स्नातक और स्नातकोत्तर की हिंदी कक्षाओं को भारत के महाविद्यालयों में पढ़ाने के बाद मेरे लिये अहिंदी भाषी बिगिनर्स–इंटरमीडिएट की हिंदी कक्षाओं को हिंदी पढ़ाना एक बड़ी चुनौती थी। अपनी हिंदी को सरलतम बनाना था, जो सबसे कठिनतम कार्य था। छात्र हिंदी लिखना तो चाहते, लेकिन रोमन लिपि में। विदेश ही क्यों भारत में भी इन दिनों युवा पीढ़ी इसी परंपरा में शामिल हो रही है। जब सोशल मीडिया पर रोमन लिपि में लिखे हिंदी के संदेशों को

साक्षात्कारकर्ता
डॉ. दीपक पाण्डेय
सहायक निदेशक
केंद्रीय हिंदी निदेशालय
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
नई दिल्ली 110066
dkp410@gmail.com

पढ़ने की जी–तोड़ कोशिश करती हूँ, तब सवाल उठता है कि हिंदी जानने वाले भी हिंदी लिखने से क्यों कतराते हैं, क्यों डरते हैं हिंदी लेखन की गलतियों से। सच तो यह है कि ऐसे सवालों के जवाब हमारे पास हैं। अपनी कट्टर विचारधारा से परे हम सोचें, कारण समझना चाहें, तो स्वयं को कठघरे में खड़ा पाएँगे। ग्यारह स्वर और तैंतीस व्यंजनों के मूल चवालीस अक्षरों में मात्राएँ जोड़कर, आधे–पूरे अक्षर मिलाकर, कितने संयुक्ताक्षर बना लिए हैं, फिर इनको सजाने के लिए हर तरह के बिंदु को स्थान दिया, जहाँ जैसे जगह मिली, शिरोरेखा के ऊपर, अक्षर के अगल–बगल, ऊपर–नीचे। अनुस्वार– अनुनासिकता के साथ, यानि बिंदु, चंद्र बिंदु के साथ, चंद्र, विसर्ग, हलंत तो जरूरी थे ही, उर्दू, अरबी, फारसी शब्दों के लिए क ख ग ज फ में नुक्ता लगाना जरूरी होता गया। अन्य भाषाओं के शब्दों को अपनी भाषा में स्थान देकर अपनी भाषा को हमने उदार तो बनाया है, लेकिन हमने अपनी लिपि में बहुत कुछ जोड़ लिया है। भारत में ही कई नगरों–महानगरों में, गली–मोहल्लों में साइनबोर्ड पर हिंदी तो है पर रोमन लिपि में लिखी हुई। ये हमें ग्लोबल वार्मिंग की तरह चेतावनी तो नहीं देते, पर हाँ संभल जाने का आह्वान जरूर करते हैं। जीवन की भागमभाग में हमारा ध्यान इस मूक चेतावनी पर नहीं जा रहा है। समय की इस तेज दौड़ में भाषा का सरलीकरण चाहिए लेकिन हम क्लिष्टीकरण में विश्वास रखते हैं। धीमी गति से हिंदी के साथ वही हो रहा है जो संस्कृत और लेटिन जैसी अपने जमाने की समृद्ध

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

भाषाओं के साथ हो चुका है। अंग्रेजी का दबदबा इसीलिये है कि सिर्फ छब्बीस अक्षरों में वह दुनिया की कई भाषाओं के, कई शब्दों को अपने में समा लेती है और सभी भाषाओं पर राज करती है।

भारत हो या भारत के बाहर, हर ओर एक सवाल है कि हिंदी के पाठक कहाँ, हिंदी की पुस्तकों की बिक्री क्यों नहीं, हिंदी पुस्तकें छपें तो पढ़ेगा कौन, आदि आदि। भारत में यदि ये सारे सवाल परेशान कर सकते हैं तो हम जैसे विदेशों में हिंदी पढ़ा रहे शिक्षकों की क्या हालत हो रही होगी यह अनुमान लगाना मुश्किल नहीं है। हिंदी को हमें जीवंत रखना है तो सरलीकरण के नये प्रयोगों से कतराना नहीं बल्कि उन्हें स्वीकारना होगा। तभी हम आज की हिंदी को सामयिक बनाकर भाषा की जीवंतता में वृद्धि कर सकते हैं। घर हो या घर के बाहर, काम पर या काम से इतर, हिंदी बोलने–लिखने–सुनने–देखने का एक जुनून–सा सवार हो, हर हिंदी भाषी को अपनी जिम्मेदारी का अहसास हो, तभी तो हम हिंदी को उसका सही स्थान दे पाएँगे। ये ही वे परिस्थितियाँ हैं जो हिंदी अध्ययन–अध्यापन–लेखन को निरंतर आगे बढ़ाने के लिये, इस सागर में अपनी एक बूँद मिलाने के लिये मुझे निरंतर प्रयासरत रखती हैं।

आपने बताया कि हिंदी क्षेत्र के मध्यप्रदेश की उच्च कक्षाओं में में हिंदी–अध्यापन का कार्य किया, और बाद में आपको न्यूयार्क में हिंदी–अध्यापन का अवसर मिला। दोनों स्थानों में हिंदी भाषा शिक्षण का परिवेश और परिस्थितियाँ बिलकुल भिन्न रहीं और संभव है कि आपको अमेरिका में भाषा–शिक्षण के दौरान अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा होगा। आपने इन चुनौतियों का संवहन कैसे किया ?

हंसादीप : दीपक जी, मध्यप्रदेश की स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं को पढ़ाने के बाद बिगिनर्स व इंटरमीडिएट कोर्स को पढ़ाना मेरी अपनी सोच में बहुत आसान काम था। लेकिन असल में यह सबसे मुश्किल काम था। दोनों स्थानों की परिस्थितियों में जमीन–आसमान का अंतर था। भारत में कक्षाओं में भूलवश भी अंग्रेजी का कोई शब्द प्रयोग नहीं किया जाता था मगर यहाँ अंग्रेजी के माध्यम से हिन्दी पढ़ानी थी। पहली कक्षा के बाद ही समझ में आ गया कि यह इतना भी आसान नहीं है। सरल से सरल शब्दों और सरलतम वाक्यों से आधारभूत हिन्दी का आधार स्वयं तय करना था। भारत की चालीस मिनट की कक्षाएँ यहाँ दो घंटों और तीन घंटों की कक्षाओं में बदल

गयी थीं और कक्षा में वे छात्र थे जो उच्चतम अंकों के साथ इस नामी यूनिवर्सिटी में अपने अतिरिक्त विषय के तौर पर हिंदी को चुन रहे थे। अपनी भारतीय उच्चारण वाली अंग्रेजी के साथ उन छात्रों को विदेशी भाषा पढ़ानी थी, जिनका वाक्य और शब्द तो दूर, हिंदी–ध्वनियों से भी परिचय नहीं था। मैं उनके लिये विदेशी भाषा हिंदी को, अपने लिये विदेशी भाषा अंग्रेजी द्वारा पढ़ा रही थी। तब मुझे अहसास हुआ कि हिंदी कितनी कठिन भाषा है।

इन चुनौतियों को मैंने स्वीकार किया। छात्रों के स्तर तक जाकर समझने की कोशिश की। हर सत्र में छात्रों का समूह बदलता और उनके सवाल, उनकी जिज्ञासाएँ भी बदल जातीं। इस तरह सत्र से सत्र की कठिनाइयों की तह तक पहुँचते हुए मैंने उनके अनुसार अपने शिक्षण को ढाला और यह भी महसूस किया कि हर नये छात्र–समूह के लिये शिक्षण में परिवर्तन आवश्यक है। साथ ही स्थानीय उदाहरण से उनके लिये समझना अपेक्षाकृत आसान है। लिहाजा मैंने अपने आधारभूत कोर्स पैक तैयार किए जो हर सत्र में कुछ नया जोड़ कर नयी कक्षा के लिये तैयार किये जाते हैं। इस लचीलेपन से हर बार उनकी जरूरतों के अनुसार कुछ जोड़ने–घटाने में काफी मदद मिलती है।

अमेरिका और कनाडा में हिंदी–शिक्षण के दौरान आपको किस–किस का सहयोग और प्रोत्साहन मिला।

हंसादीप : दीपक जी, अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। मैं अपने परिवार से, अपने मित्रों से लगातार चर्चा करती हूँ। कई बार सामान्य बातचीत में बड़े–बड़े सवालों के हल मिल जाते हैं। इसके साथ ही कई अन्य भाषाओं को पढ़ा रहे शिक्षकों से भी बातचीत होती है। वे भी अपनी भाषा जैसे अरबी, फारसी, जर्मन, इटालियन, फ्रेंच आदि को पढ़ाते हुए आमतौर पर कुछ वैसी ही कठिनाइयों से जूझते हैं तो इस तरह आपस में संवाद, कक्षा में बेहतर शिक्षण के लिये मददगार होता है। विभाग और अन्य सहकर्मियों की राय से रास्तों की रुकावटें कम होती जाती हैं। जैसे चिकित्सकों को अपने इलाज व नवीनता को स्वीकार करने के लिये लगातार पढ़ना पड़ता है, ठीक वैसे ही भाषा भी बदलते समय के साथ आए बदलावों को स्वीकार करने के लिये तैयार रहे यह दायित्व भाषा के शिक्षकों को अपने कंधों पर लेना ही चाहिए।

क्या अमेरिका और कनाडा में हिंदी अध्ययन–अध्यापन के लिए पर्याप्त पाठ्य–सामग्री उपलब्ध है ? इन देशों में किस सतर्कता के साथ हिंदी अध्यापन का कार्य करना चाहिए ?

हंसादीप : पाठ्य सामग्री आंशिक रूप में उपलब्ध है लेकिन जहाँ तक मेरा अनुभव है जगह बदलते ही कुछ परिवर्तन आवश्यक से हो जाते हैं। जैसे वाक्य बनाने में यहाँ की स्थानीय जगह का नाम हो तो उनके लिये समझना आसान हो जाता है। यहाँ तक कि कैंपस भी अगर बदलता है तो छात्रों के समूह का स्तर और उनकी जरूरतें बदल जाती हैं। इसीलिये मेरी प्राथमिकता होती है कि हर संस्थान के लिये मैं अपने लिखे कोर्सपैक में आवश्यक परिवर्तन करूँ और अपनी पढ़ाने की शैली में भी उनके अनुरूप परिवर्तन करूँ तभी मेरा पढ़ाना छात्रों को समुचित रूप से ग्राह्य होगा। यह कहा जा सकता है कि उचित पाठ्यक्रम और समय की आवश्यकता के साथ बदलाव इन कक्षाओं की लोकप्रियता का एक महत्वपूर्ण आधार है। बाजार की मांग के अनुरूप पूर्ति करना अगर अर्थशास्त्र का आधारभूत सिद्धांत है तो बदलते समय, बदलते कक्षा समूह के साथ पाठ्यक्रम में बदलाव भी शिक्षण की योजनाओं का एक महत्वपूर्ण अंग होना चाहिए। इस बदलती तकनीकी दुनिया में हर दिन नयी खोज और नयी तकनीक का आना हर विषय–वस्तु को उसके अनुरूप बदलने के लिये नया कैनवास, नया धरातल देता है। 'बिगिनर्स कोर्स' में जहाँ भाषा की व्याकरण खत्म की गयी वहीं से आगे की व्याकरण को जोड़ते हुए 'इंटरमीडिएट कोर्स' में अनुच्छेद लेखन पर फोकस करते हुए आगे बढ़ने की कोशिश होती है। नयी व्याकरण के साथ नयी शब्दावली, नयी धरा पर नये विचार लाती है। छात्र का विश्वास जागने लगता है कि अब वह भाषा की आधारभूत जानकारी से परिचित है। हिन्दी फिल्मों की लोकप्रियता को देखते हुए कई बार उनसे भी सीखने–सिखाने में मदद मिलती है।

हंसादीप जी, आपने कहा कि हमें हिंदी को सरल बनाने की दिशा में काम करने की आवश्कता है। इस दिशा में आपके दृष्टिकोण से कौन–कौन से कदम उठाए जाने अपेक्षित हैं ?

हंसादीप : दीपक जी, मुझे इस बात का गर्व है कि हिंदी ने अपना दिल बहुत बड़ा किया है। वह हर ग्लोबल शब्द को जगह दे रही है।

आज की तकनीकी उन्नति के साथ हिंदी कदम से कदम मिलाकर चल रही है। लेकिन यह उदारता हमें अपनी लिखित भाषा को बदलने के लिए मजबूर नहीं कर सकती। आए दिन हम अपनी लिपि में बदलाव ला रहे हैं। दूसरी भाषा के बहुप्रचलित शब्दों का दिल खोलकर स्वागत करने के लिए अपनी लिपि को बदलना कहाँ तक उचित है। अन्य भाषाएँ तो ऐसा नहीं करतीं। अंग्रेजी के दबदबे से हम क्यों नहीं सीख सकते जो न जाने कितनी भाषाओं के प्रचलित शब्दों को साधिकार लेती है लेकिन अपने छब्बीस अक्षरों में कोई बदलाव नहीं करती। जो भी बदलाव करती है उन्हीं छब्बीस अक्षरों के दायरे में। वे ही छब्बीस अक्षर दुनिया भर के शब्दों को लिखते हैं चाहे फिर टोरंटो शहर का 'ज' हो या किसी तान्या नाम की लड़की का 'ज'। और निरूसंदेह इन्हीं छब्बीस अक्षरों ने दुनिया में हल्ला मचा रखा है। यूँ हर भाषा के अस्तित्व को चुनौती देती अंग्रेजी भाषा पूरी दुनिया पर राज कर रही है। सपाट शब्दों में कहा जाए तो हिंदी में हमने धीरे–धीरे, एक–एक करके अपनी लिपि को जिस तरह बदला है, वे भाषा के सारे सौंदर्य प्रसाधन अपने "साइड इफेक्ट्स" की कहानी कह रहे हैं। गुस्सा बताने के लिए भी नुक्ता लगाकर गुस्सा लिखना पड़ता है। फिल्म और फेसबुक तो अंग्रेजी के शब्द हैं, वहाँ भी नुक्ता लगाना अनिवार्य कर देते हैं हम। शायद हमारे फल वाले "फ" में इतनी ताकत ही नहीं कि वह फिल्म और फेसबुक को ध्वनि दे सके। पहले ही अक्षर के बीच में, ऊपर–नीचे, अगल–बगल, मात्राओं की, बिंदुओं की कमी नहीं है, तिस पर हर जगह नुक्ते ने अपनी जगह बना ली है। यह नुक्ता कब और कैसे अपनी जगह बनाकर नीचे टिकता गया पता ही नहीं चला। हिंदी की बिंदी तो ऊपर थी ही, नीचे ड और ढ की बिंदी थी। नुक्ते ने नीचे खाली जगह में अपनी जगह बना ली। हिंदी के भाषायी सौंदर्य प्रसाधनों की बढ़ोतरी होती ही जा रही है। बेचारे एक छोटे–से बच्चे को हम अंग्रेजी स्कूल में भेज रहे हैं। हिंदी के इतने अनुस्वार, मात्रा, नुक्ते, संयुक्त व्यंजन का रट्टा लगाकर वह कैसे ढंग से सीख पाएगा अपनी भाषा हिंदी! वह भी ऐसे में, जब उसकी पहली भाषा हिंदी को हम उसकी दूसरी भाषा बना चुके हैं, क्योंकि पहली भाषा के रूप में तो अब अंग्रेजी ही स्वीकार्य है हमें। इसीलिए वह हिंदी को अंग्रेजी में लिखकर अपना काम चला लेता है।

सारे हिन्दीदाँ को सोचने के लिए नहीं, परिवर्तन के लिए कदम उठाने हैं। चाहे शिक्षक हों या छात्र, लेखक हों या पाठक, कभी तो हम यह सोचें कि कहाँ हम हिंदी को सरल कर सकते हैं। दुःख के बीच से विसर्ग हटा कर दुख कर दें, या भगवान् में हलंत न लगाकर भगवान लिखें, या फिल्म से नुक्ता हटाकर फिल्म लिखें तो हमारी हिंदी का कतई अपमान नहीं होगा। हाँ, नए लिखने–पढ़ने वाले के लिए कम से कम तीन चीजें तो कम होंगी। तीन ही नहीं, ध्यान से सोचें तो ऐसे कई प्रयोग हम कर सकते हैं। यह हिंदी को रोमन लिपि में लिखने से तो लाख दर्जा बेहतर होगा। इस बारे में आंशिक पहल कई संपादकगण कर चुके हैं, और शेष कर सकते हैं।

मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि मैं एक खतरनाक मुद्दे को विषय बना रही हूँ। लेकिन विदेशी माहौल में हिंदी कक्षाओं के जीवित रखने के उत्साह को बनाए रखने के लिए ऐसे मुद्दों से हर रोज निपटना पड़ता है। मैं भी कट्टर हिन्दी प्रेमी हूँ और समय के साथ बदलावों को स्वीकार करने में अपना दिल और दिमाग खुला रखती हूँ। अपनी भाषा के मूल को जिन्दा रखते हुए उसे जितना सरल बना सकती हूँ, बनाने का प्रयास करती रहूँगी। सरलता लाने के लिए भी मानकता जरूरी है और उसके लिए हम सबके प्रयासों की जरूरत होगी। हिंदी के सरलीकरण को अपनाने की दिशा में ठोस कदम उठाने आवश्यक हैं। चीनी भाषा ने अपनी क्लिष्टता से मुक्ति के लिये 'सिमप्लीफाइड चाइनीज' को प्रोत्साहित किया है। इससे उनकी लिपि या भाषा खत्म नहीं हुई, सरल रूप में भावी पीढ़ियों ने इसे अपना लिया। हिंदी को हमें जीवंत रखना है तो सरलीकरण के नये प्रयोगों से कतराना नहीं बल्कि उन्हें स्वीकारना होगा और सरलीकरण का मानक रूप घोषित कर सभी को अनिवार्य रूप से अपनाना होगा। तभी हम आज की हिंदी को सामयिक बनाकर भाषा की जीवंतता में वृद्धि कर सकते हैं।

आपने हिंदी अध्यापन के साथ–साथ अनेक अंग्रेजी फिल्मों के लिए हिंदी में सबटाइटल अनुदित किए हैं। इस प्रकार के सृजनात्मक कार्य से आपका जुड़ाव कैसे हुआ ? इस प्रकार का कार्य कथा लेखन में कैसे सहायक है?

हंसादीप : दीपक जी,जीविका की तलाश में यह नया कार्य बेहद सहायक एवं रुचिकर रहा। नये देश में सबटाइटल्स के अनुवाद का कार्य एक बेहतरीन अनुभव था जिसने भाषाओं की अपनी ताकत से रूबरू करवाया। एक बार अनुवाद कार्य शुरू किया तो एक के बाद

एक फिल्में आती रहीं अनुवाद के लिये। अंग्रेजी फिल्मों के अनुवाद में फिल्म लगातार व बार–बार देखनी पड़ती थी ताकि स्त्रीलिंग–पुल्लिंग की पहचान समस्या न बने। कई ऐसे शब्द भी होते थे, जिनके लिये हिंदी शब्द ढूँढना टेढ़ी खीर होता था। तब भाषा विशेष की अपनी अभिव्यक्ति के महत्व का पता लगता था। जरा–सा भी फोकस हटा नहीं कि अर्थ का अनर्थ होना इतना सहज हो जाता था कि पकड़ पाना मुश्किल हो जाता। तब मैंने जाना सही अनुवाद करना एक बड़ी चुनौती है। मूल लेखक की भावनाएँ जो रचना में हैं उन्हें बगैर चोट पहुँचाए अन्य भाषा के दर्शकों तक पहुँचाना एक बहुत बड़ी कला है। अनुवादक शब्द से शब्द का नहीं बल्कि अर्थ से अर्थ का मिलान करे तो ही अनुवाद बेहतर हो पाता है वरना मूल भाषा की मिठास उसमें नहीं बचती। साथ ही जिस भाषा में अनुवाद हो रहा है, उस भाषा के लोगों को यह पढ़ना–सुनना बनावटी–सा लगता है। अनुवाद की चुनौती को स्वीकार करके अनुवादक दो भाषाओं के बीच सेतु बनकर अपने कौशल से इस कार्य को सशक्त बनाता है।

अनुवाद कार्य ने मुझे न्यूयॉर्क और टोरंटो जैसे शहरों के बहुसांस्कृतिक माहौल को अपना कर यहाँ की जीवन शैली को गहराई से समझने में अत्यधिक योगदान दिया। इस रचनात्मक अनुभव ने लेखन में निश्चित ही सहायता की। मेरी सोच इस तथ्य को स्वीकार करने लगी कि कथातंतुओं को चुनते हुए किसी देश–काल की सीमाओं को नहीं बल्कि मनुष्य की भावनाओं को महत्ता दी जाए। मूल अंग्रेजी भाषा में बनी फिल्में हिंदी दर्शकों तक ले जाने का उद्देश्य एक लेखक के लिये संदेश दे जाता कि कला को सर्वकालिक और सर्वग्राही होना चाहिए। किसी चित्र की अनुभूतियों को चित्रकार समझाता नहीं है चित्र स्वयं समझाता है, वही संदेश लेखनकला के लिये कथाकार को अपनी कहानी को सीमाओं से परे रखने में मदद करता है।

किसी कहानी का कथ्य मिल जाने के बाद उस कथ्य को अभिव्यक्ति के स्तर तक पहुंचाने में कितनी छटपटाहट रहती है और यह प्रक्रिया कहाँ तक और कैसे आत्मसंतुष्टि तक पहुँचती है ?

हंसादीप : दीपक जी, लेखन प्रक्रिया में हर रचना की अपनी एक अलग अभिव्यक्ति शैली होती है। हो सकता है कि जिस तरह मैं सोचती हूँ और लेखन को आगे बढ़ाती हूँ वैसा और लेखकों के साथ न हो। मेरा अपना यह अनुभव रहा है कि अपनी किसी कहानी का

कथ्य मिल जाने के बाद उस कथ्य को अभिव्यक्ति के स्तर तक पहुंचाने में रास्ता आसान होता है। कथ्य मिलने भर की देर होती है और वह तब होता है जब मुझे या तो कोई घटना बहुत अच्छी लगती है या बहुत तकलीफ देती है, उस घटना से जुड़े इंसानों का स्वभाव दिल को छूता है या फिर कचोटता है। बस वहीं कथ्य सामने होता है एक कहानी के रूप में। एकबारगी लगता है कि ऐसी घटनाओं पर तो बहुत लिखा जा चुका है पर फिर भी लेखनी चल ही जाती है। लेखन की छटपटाहट पीड़ा वाली नहीं होती कि "बस अभी इसे खत्म करना है।" एक पैराग्राफ में वह कथ्य लिखकर सुरक्षित करने के बाद फिर समय मिलने पर विस्तार होता रहता है, क्योंकि परिवार और नौकरी की प्राथमिकताओं के बाद ही लेखन हो पाता है। कई बार ऐसे उलझ जाना पड़ता है कि समय को पकड़ना मुश्किल हो जाता है। जब समय का वह टुकड़ा मेरी मुट्ठी में होता है तो यह मेरे लिये अपना समय होता है मन के अवकाश का, जब मैं अपने चरित्रों के साथ घुलमिल जाती हूँ। मुझे याद है जब बंद मुट्ठी उपन्यास लिख रही थी, तब उसके पात्र सैम और तान्या मुझे कक्षाओं के भीतर, बाहर, कॉफी शाप पर, हर जगह दिखाई देते थे।

आत्मतुष्टि ही रचनाकार का सबसे बड़ा सुख है, जब वह रचना आकार ले लेती है। प्रारंभ में तो शब्द छूटते हैं, अर्थ बिखरते हैं और भाव जुगाली भर करके रह जाते हैं। इन सबको साथ में लाने का प्रयास करना ही आत्मतुष्टि दे जाता है। जब तक स्वयं को संतुष्टि नहीं मिलती रचना पूरी नहीं होती। कई बार ऐसा होता है कि अपनी साल भर पहले लिखी कहानियों को पढ़ने का मन करता है। कई बार पात्रों के नाम भी वही सूझते हैं जो पहले आ चुके हैं। बहुत सामान्य रूप से बगैर किसी तनाव के ही लिखने का आनंद लेती हूँ मैं। समय की सीमाओं में बंधकर नहीं लिख पाती, न ही किसी तरह का दबाव स्वीकार्य होता है।

'प्रवास में आसपास' कहानी संग्रह की कहानियों के कथ्य में वैविध्य है, समाज के विविध रूप–रंग इसमें समाये हैं। कहानियाँ पढ़ते हुए पात्रों के संवाद में भारतीय दर्शन के आयाम परिलक्षित होते हैं, स्थान और पात्र तो विदेशी हैं पर विस्तार में भारतीय संवेदना है। प्रवास में भारतीय समाज और संस्कृति से जुड़ाव के संबंध में आपके क्या विचार हैं ?

हंसादीप : जी, आपने सही कहा दीपक जी, सबसे पहली बात तो मैंने अपने जीवन के अड़तीस वर्ष भारत में गुजारे हैं और प्रवास में मैं अपने परिवार की पहली पीढ़ी में हूँ इसलिये भारतीयता मुझ में रची–बसी है। मेरे बच्चों ने अपने जीवन के आठ–दस साल भारत में गुजारे हैं, यह दूसरी पीढ़ी आंशिक रूप से जुड़ी है भारत से। लेकिन अब उनके बच्चे जिनका जन्म यहाँ हुआ है उनमें वह अंश ढूँढना चाहें तो न के बराबर मिलता है। कहने का तात्पर्य है कि पहली पीढ़ी के प्रवासी रचनाकार से यह अपेक्षा करना कि वह पूरी तरह विदेशी मानसिकता के साथ लिखे तो यह पूर्णतः असंगत प्रतीत होता है।

दूसरी बात, मैं कैनेडा के टोरंटो शहर में रहती हूँ और अमेरिका के न्यूयॉर्क शहर में मैंने छह वर्ष बिताए हैं। दोनों ही शहर बहुसंस्कृति में रचे–बसे हैं। घर के आसपास कोई चीन से है कोई कोरिया से, कोई ईरान से, कोई बांग्लादेश से, कोई श्रीलंका से, हंगरी या फिर यूगांडा से। ऐसे में हर कोई अपनी संस्कृति वाले से जुड़ कर अपने त्योहार मनाता है हम भी वही करते हैं। शेष लोगों से या ताकाम के या फिर हाय–हलो वाले संबंध होते हैं। जर्मनी में पूरी तरह जर्मन संस्कृति या फिर रूस की तरह रूसी संस्कृति जैसी कोई एक संस्कृति इन शहरों की बसाहट में नहीं है। मेरा यह मानना है कि लेखक कहीं भी रहकर लिखे अपनी भावनाओं को बदल नहीं सकता। कई आलोचक मित्रों ने भी रचनाओं पर अपनी टिप्पणी देते हुए यह कहा है कि "स्थान और पात्र तो विदेशी हैं पर विस्तार में भारतीय संवेदना है।" जहाँ तक मैं सोचती हूँ संवेदनाएँ कभी किसी देश की सीमाओं में बंध नहीं सकतीं। संवेदनाएँ तो मानवीय होती हैं देशों, पात्रों और नामों से परे। मेरी कोशिश यही होती है कि उन मानवीय संवेदनाओं को कहानियों में जगह दूँ। मुझे याद है एक कहानी को पढ़कर संपादक जी ने कहा था "कहानी तो अच्छी है पर इसमें पता ही नहीं चलता कि पात्र किस देश के हैं।" मैंने इसे एक सुखद प्रतिक्रिया के रूप में स्वीकार किया था। रचना के पात्र देश–काल की सीमाओं से परे अपनी बता कह जाएँ तो बदलते देश–काल से परे रचना को मानवीय संदर्भों में परखा जा सकता है। आज भी लिखते समय मैं भारत, अमेरिका व कैनेडा के बारे में नहीं सोचती, शायद तब भी मैं सिर्फ मानवीय संवेदनाओं और सरोकारों को उकेर रही होती हूँ। तब मेरे लिये पात्रों के नाम व स्थान मायने नहीं रखते। यह आक्षेप

भी मायने नहीं रखता कि विदेश में रहकर भी आपके लेखन में भारतीयता ही झलकती है। इसके अलावा भी, संवेदनाओं को समझने की शक्ति इंसान को अपने परिवेश से प्राप्त होती है, जो मैंने अपनी भारतीय जड़ों से ग्रहण की है, वह शायद कभी बदलने वाली नहीं है।

'उसकी औकात' कहानी में समाज में व्याप्त मौकापरस्ती और दोगलेपन का जीवंत चित्रण है। आपको इस कहानी का कथ्य कैसे मिला, क्या इस प्रकार का वातावरण आपके प्रवास वाले देश में भी विद्यमान है ?

हंसादीप : दीपक जी, मेरा यह सौभाग्य है कि दुनिया के तीन देशों, भारत, अमेरिका व कैनेडा में नौकरी करने का व कामकाजी माहौल से पूरी तरह परिचित होने का मौका मिला। भारत के कई अलग–अलग शहर तो मेरे कार्यस्थल रहे ही, न्यूयॉर्क और टोरंटो जैसे शहर भी मेरे कार्यस्थलों में एक विशेष स्थान बनाए रहे जहाँ दुनिया के हर देश के लोगों के साथ मेरा आमना–सामना हुआ, जिसने मुझे बाहरी दुनिया का अनुभव वैश्विकता के साथ दिया। इस अनुभव ने ही मुझे यह सोचने के लिये प्रेरित किया है कि संवेदनाएँ, चाहे फिर वे सद्भावनाएँ हों या दुर्भावनाएँ, मानव मात्र में मौजूद होती हैं। हाँ,इनका आवेग कभी कम तो कभी ज्यादा हो सकता है। समाज में व्याप्त मौकापरस्ती और दोगलेपन का मानवीय चरित्र देश काल के अनुसार अपना आकार अवश्य बदलता है, स्वभाव नहीं। 'उसकी औकात' कहानी किसी जगह विशेष को नहीं मनुष्य की प्रवृत्तियों को उजागर करती है जो मुझे हर कहीं दिखाई दिए। यह कहानी कार्यस्थल के उन्हीं अनुभवों की एक छोटी सी झलक मात्र है। वैसे भी कथ्य मिलता है तो कहानीकार की कल्पना उसे सँवारती है, उसे कभी किसी रिपोर्ट की तरह नहीं लिखा जा सकता। वही कल्पना कथ्य को एक नया रूप दे पाती है। जो घटना का विवरण भर न रहकर एक रचनात्मकता लिये हुए होता है, फिर चाहे उसे जो भी नाम दिया जाए वह किसी जगह विशेष की घटना नहीं रह जाती।

आपकी दृष्टि में नारी–स्वातंत्र्य क्या है, और इसकी सीमाएँ कहाँ तक होनी चाहिए ?

हंसादीप : मेरी दृष्टि में दीपक जी, नारी–स्वातंत्र्य एक आंदोलन के रूप में नहीं बल्कि एक चुनौती के रूप में है कि अगर कोई भी इंसान, फिर चाहे वह नारी हो या पुरुष, अगर परतंत्रता की जंजीरों में जकड़ा

हुआ है तो ही उसे स्वतंत्रता चाहिए और उसके लिये खुद उसीको प्रयास करने होते हैं। उसे अपने जीवन के लिये स्वयं ही कुछ करना होगा। नारी ने भी अपनी सामाजिक जंजीरों को तोड़ने के लिये स्वयं कदम उठाए हैं। जब–जब नारी ने यह प्रयास किया तब ऐसे किसी शब्द से उलझना नहीं पड़ा। वही आज भी हो रहा है। नारी इंसान ही है, जानवर नहीं कि कोई उसे बांध कर रख सके, या फिर उसकी स्वतंत्रता के लिये कोई सीमाएँ निर्धारित की जाएँ। यह तो उसीपर निर्भर है कि वह अपना जीवन कैसा चाहती है। क्या हमारे समाज ने पुरुषों के लिये कोई सीमाएँ तय की हैं, बिल्कुल नहीं तो फिर नारी की स्वतंत्रता के लिये सीमाएँ तय क्यों की जाएँ। तय करेगा कौन, उसे स्वयं तय करने का अधिकार है कि वह कैसे अपना जीवन जीना चाहती है। वह आज जहाँ तक पहुँच गयी है वहाँ तक किसी ने नहीं पहुँचाया है वह अपने स्वयं के प्रयासों से पहुँची है।

'अपने मोर्चे पर' कहानी में आपने सवि और नेहा के नारी–स्वातंत्र्य की पक्षधरता के माध्यम से पारिवारिक संबंधों में आने वाले परिवर्तन को दर्शाया है। क्या आप आधुनिक समाज में नारी–स्वातंत्र्य के कारण कोई विघटन को देखती हैं ?

हंसादीप : दीपक जी, 'अपने मोर्चे पर' कहानी में आज की नारी और आज की पारिवारिक स्थिति चित्रित है। आधुनिक परिवेश में जब नारियों को अपनी ताकत का अहसास हो गया है तो घर के पुरुष उनकी पूरी सहायता करते हैं। अब कामों पर कोई ठप्पा नहीं लगा है कि घर में सफाई सिर्फ महिला करेगी या फिर खाना वही बनाएगी। जो भी, जिस समय, जो कुछ कर सकता है आपसी समझबूझ से, तो ही घर चलता है। पारिवारिक विघटन की कोई संभावना ही नहीं है जब दोनों मिलकर घर चलाएँ। निश्चित रूप से ये विघटन के संकेत नहीं हैं कि महिलाएँ बाहर जा रही हैं, अपितु य`बदलाव के संकेत हैं। महिला को अगर पुरुष का साथ चाहिए तो यही स्थिति पुरुष की भी हो कि उसे भी वैसा ही साथ चाहिए तो ही परिवार सशक्त बन सकेगा और जुड़ा रह सकेगा। आज के बदलावों में नारी और पुरुष को एक टीम की तरह जीना सीखने की जिम्मेदारी दोनों की है। 'अपने मोर्चे पर' कहानी में नारी के बढ़ते कदम उसे परिवार से विस्तृत फलक पर जोड़ रहे हैं, फिर वह बेटी या पत्नी की भूमिका में हो, अपनी बात कहने का और रोजमर्रा के कामों में अपनी सहभागिता से परिवार को

बेहतर बनाने की उसकी कोशिश है, यह संगठन की शक्ति है, विघटन नहीं।

हंसा जी आपका कहानी संग्रह 'प्रवास में आसपास' हिंदी जगत में लोकप्रिय हो रहा है। आपको भी इस बात की सूचना होगी कि हाल ही में विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में इस संग्रह की समीक्षाएँ प्रकाशित हुई हैं। हिंदी समाज में इस संग्रह के स्वागत से आप कैसा महसूस करती हैं ?

हंसादीप : बहुत अच्छा लग रहा है दीपक जी, ठीक वैसा ही जैसा अपने बच्चों की प्रशंसा में कुछ कहा जा रहा हो। नौ महीनों की वह बेचैनी और छटपटाहट बच्चे के जन्म के साथ ही खुशियों में बदल जाती है, तो रचना का जन्म भी मन के कड़े संघर्ष के बाद ही हो पाता है। उसके बाद जब अपनी कृति पर सराहना मिलती है तो वह सारी पीड़ा याद नहीं रहती बल्कि पूर्णता का अहसास होता है। साथ ही, जिम्मेदारी भी बढ़ जाती है कि अगली बार और अधिक परिश्रम करना होगा ताकि श्रेष्ठ रचनाक्रम की निरंतरता बनी रहे। यह कभी न खत्म होने वाली खुशी तो है ही साथ ही और, और लिखने व सराहना पाने की भूख भी जगा जाती है। प्रवास में आसपास कहानी संग्रह की प्रत्येक कहानी हिंदी साहित्य की सुस्थापित पत्रिकाओं में छप चुकी हैं व कई प्रतिक्रियाएँ मिल चुकी हैं। इन कहानियों पर मित्रों द्वारा की गयी कुछ ही टिप्पणियों को मैं संग्रह में स्थान दे पायी हूँ, व कई को सिर्फ धन्यवाद ही कह पायी हूँ। मित्रों के इस स्नेह की वजह से मेरा उत्साहवर्धन हुआ, मार्गदर्शन भी हुआ व रचनाओं को तराशने में मदद मिली। यही कारण है कि इस पुस्तक के आने के बाद मुझे पूरा विश्वास था कि इसका स्वागत होगा।

स्त्री–विमर्श और स्त्री–आंदोलन के संबंध में आपकी क्या धारणा है और साहित्य में इसे किस रूप में स्थान मिलना चाहिए ?

हंसादीप : स्त्री विमर्श व स्त्री आंदोलन पर मेरी सोच हमेशा इसे एक चुनौती के रूप में स्वीकार करती है। सदा से स्त्रियों के साथ अन्याय होता रहा है जिसे बरसों पहले भी साहसी स्त्रियों ने चुनौती के रूप में लिया व अपने अधिकारों के लिये सफलतापूर्वक लड़ती रहीं। आज भी आंदोलन का चाहे कोई भी स्वरूप क्यों न हो हर स्त्री को स्वयं ही आगे आना पड़ता है व अपने अधिकारों के लिये लड़ना पड़ता है, तो ही वह अपनी लड़ाई में जीत सकती है। जहाँ यह सजगता है

वहाँ किसी आंदोलन की नहीं, हिम्मत की जरूरत है। परंपराओं के नाम पर थोपे गए सामाजिक बंधनों को तोड़ना भी है और परिवार को विघटित भी नहीं होने देना है। स्त्री–पुरुष परिवार की गाड़ी के दो पहिए हैं। फिर दोनों में से कोई भी एक खुश नहीं तो गाड़ी अटक ही जाएगी और परिवार टूट जाएगा। यह पारिवारिक विघटन आने वाली कई पीढ़ियों को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। यह घर की चहारदीवारी के भीतर की समस्या है कोई तीसरा इसे सुलझा ही नहीं सकता। इसीलिये परिवार के दोनों पहिए आपसी तालमेल से ही अपनी गाड़ी चला सकते हैं। तब किसी आंदोलन से नहीं बल्कि आपसी समझदारी व सूझबूझ से ही घर की नींव मजबूत होगी।

मुझे इस बात का गर्व है कि आज अधिकांशतः महिलाएँ अपना रास्ता तय कर रही हैं, परिवार के साथ। अपवादों की संख्या आज भी काफी है जहाँ उसे पिसना पड़ रहा है लेकिन तेजी से आता बदलाव हमें इस बात का संकेत अवश्य दे रहा है कि गाँवों, कस्बों और महानगरों में परिवर्तन की हवा तेजी से बह रही है। महिलाओं के प्रति अन्याय, शोषण यह सदियों से चली आ रही एक सामाजिक समस्या है। और 'साहित्य तो समाज का दर्पण है', इसलिये समाज की विसंगतियों को साहित्य में स्थान तो मिलता ही है, तो स्वाभाविक ही यह साहित्य का हिस्सा है। चाहे कोई स्वीकार करे या न करे स्त्री विमर्श आज एक सार्थक बहस के रूप में अपना स्थान ले चुकी है।

हंसा जी आपको 'कुबेर' उपन्यास का कथ्य कैसे मिला, और इसकी रचना प्रक्रिया में क्या उतार–चढ़ाव आये ? कहीं यह अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने की मेहनती दृढ़ इच्छा शक्ति का परिणाम तो नहीं ?

हंसादीप : दीपक जी, कुबेर उपन्यास बरसों से मेरे मस्तिष्क में था। पिछले वर्ष इसे जब पूर्ण किया तो मुझे लगा कि मैं जो कहना चाहती थी वह मैंने पूरे न्याय के साथ कह दिया है। उतार–चढ़ाव तो बहुत थे, जो मनःस्थिति को प्रभावित करते थे, अमूमन ऐसा होता है जब कहानी ढाई सौ पृष्ठों में जा रही हो। लेकिन ऐसे कई मोड़ आए जो मुझे बहुत कुछ सिखा कर गए। उपन्यास को विस्तार देते हुए कई ऐसी घटनाएँ होती हैं जो कहानी का हिस्सा बनकर अनायास ही शामिल हो जाती हैं। और तब, यह भी लगता है कि पाठक के लिये बहुत कुछ ऐसा न हो जाए जो पूरी तरह से नया हो। उपन्यास का अधिकांश हिस्सा अमेरिका के न्यूयॉर्क शहर के घटनाक्रमों को चित्रित

करता है। स्वाभाविक ही एक सवाल उठता था मनोमस्तिष्क में कि भारत के वृहत हिंदी पाठक वर्ग को इसमें शामिल होकर कहानी के मर्म को पकड़ना आसान होगा या नहीं। न्यूयॉर्क शहर की जानकारी देते हुए वहाँ के व्यावसायिक जगत से परिचित करवाना एक साहसिक व जिम्मेदारी पूर्ण कदम था। उस सामग्री को सरल–सहज व सुग्राह्य बनाने के लिये भी अतिरिक्त प्रयासों की आवश्यकता महसूस की मैंने। यही कारण था कि न्यूयॉर्क शहर की पेशेवर जिंदगी के बारे में विवरण देते समय बहुत सावधानी बरतनी पड़ी। लेकिन मुझे इस बात की खुशी है कि प्रतिक्रिया उत्साहवर्धक रही। कई आलोचक मित्रों ने यह भी कहा कि ऐसे आदर्शवादी लोग होते कहाँ हैं, आपके उपन्यास में आदर्शों की भरमार है। जवाब में, मैं सिर्फ यही कह पायी कि मैंने यह पुस्तक माननीय कैलाश सत्यार्थी जी को समर्पित की है, उनके जैसे आदर्श चरित्र को ही तो लाना था मुझे। आज उनके जैसे कई चरित्र हैं जो समाज के लिये स्वयं को समर्पित कर चुके हैं। जब ऐसे कई चरित्र हैं हमारे समाज में तो आखिर क्यों सिर्फ बुराइयों का चित्रण ही एक अच्छी रचना का मापदंड हो।

कुबेर उपन्यास में गरीबी और अमीरी, दो सभ्यताओं में पिसते मानवीय मूल्यों का उदघाटन करता है और कथानक इतना रोचक बन पडा है कि अब आगे क्या होगा जानने की इच्छा पाठक को लगी रहती है। कृपया इस उपन्यास की कथा–बुनावट के अपने अनुभवों को साझा कीजिए।

हंसादीप रू दीपक जी, मैं भारत, मध्यप्रदेश के झाबुआ जिले से हूँ, आदिवासी बहुलता वाले इस क्षेत्र में गरीबी को मैंने अपनी आँखों से देखा है। आज से साठ साल पहले मेरे छोटे–से गाँव मेघनगर में न कोई कान्वेंट था, न कोई निजी स्कूल। सरकारी स्कूलों की जर्जर हालत और बहनजी के रौब से चुपचाप पढ़ते बच्चे तब कुछ बड़ा सोच ही नहीं सकते थे। जो है उसी में खुश थे। आज यहाँ एक विकसित शहर टोरंटो में रहने वाले के लिये उन दिनों वहाँ की जो स्थिति थी वह अकल्पनीय है। यही कारण है कि वहाँ से मेरा पात्र निकल कर ऐसी जगह पहुँचा जहाँ आज मैं हूँ, या मेरा परिवार है। मेहनत व दृढ़ इच्छा शक्ति से ही तो मैं झाबुआ जिले में पली–बढ़ी, शिक्षित हुई और आज टोरंटो की जानी–मानी यूनिवर्सिटी में पढ़ा रही हूँ। मैं आज से पचास–साठ साल पहले के सरकारी स्कूलों की उपज हूँ, यहाँ तक पहुँची हूँ, तो किसी चमत्कार से तो पहुँचना संभव नहीं था। ठीक इसी

तरह जब कुबेर का पात्र धन्नू न्यूयॉर्क शहर के रईसों में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाता है तो कहीं न कहीं मैं अपनी कहानी को रचनात्मक बना रही होती हूँ। जिसमें मुझे सच्चाई अधिक और कल्पना कम लगती है। तब मेरा पात्र धन्नू सिर्फ एक आदर्श नहीं रहता, बल्कि यथार्थ की ही अभिव्यक्ति करता है। मैंने झाबुआ की गरीबी को करीब से देखा है तो लोगों का निठल्लापन भी देखा है। संदेश यही देना चाहती थी कि काम करो, अपनी गरीबी दूर करो। प्यासे को पानी तक ले जाया जा सकता है मगर पीने को बाध्य नहीं किया जा सकता। गरीबी का चरम देखने, महसूसने के बाद मैंने अमेरिका की अमीरी को बेहद करीब से देखा है। मेरा पात्र धन्नू बनाम डीपी, भारत से न्यूयॉर्क जब पहुँचता है तो वहाँ की भव्यता से नहीं अपनी मेहनत से कामयाब होता है। तब मैं यह संदेश देना चाहती थी कि मैं गरीब हूँ, मैं गरीब हूँ चिल्लाने से कोई अमीर नहीं होता। स्वयं मेहनत करनी पड़ती है। इसके साथ ही, अमेरिका के कई शहरों में बड़े–बड़े टावर देखती थी जिन पर व्यक्ति विशेष के नाम लिखे हुए रहते थे। न्यूयॉर्क में, लास वेगस में हर जगह ऐसे टावर को देखते दौलत की चकाचौंध को महसूस किया था। तभी मैंने कल्पना की थी कि एक देसी कुबेर लाना है मुझे, जो राजनीति के गलियारों से दूर एक समाजसेवी होगा और अपने कमाए पैसों का उपयोग समाजसेवा में करेगा और ऐसे कई टावर अपने शीर्ष पर उसके नाम के साथ शान से खड़े होंगे। बस तभी से यह विचार फल–फूल रहा था। एक सफल व्यवसायी अपनी मेहनत व दिमाग से ही उस जगह पहुँचता है। कुबेर के लिये मेरे दिमाग में सिर्फ अमेरिका के नहीं भारत सहित दुनिया भर के कई समाजसेवी थे जो आज खुद इतने समर्थ हैं कि धनवानों की सूची में लगातार रहते हैं, अपनी मेहनत से व अपने श्रम से कमायी गयी दौलत से जी भर कर समाजसेवा कर रहे हैं। लिखते–लिखते कई नए विचार आए–गए और देसी कुबेर की छवि लेकर मुझे झिंझोड़ते रहे। मार्क जुकरबर्ग भी सामने आए, बिल गेट्स भी नजरों में रहे। और भी कई व्यावसायिक चेहरे थे, जो मेरा रास्ता आसान करते रहे। इन सब महारथियों ने अपने बलबूते पर बहुत कमाया और समाजसेवा में लगाया। आदर्शों को देखने के लिये हमें किसी और युग में जाने की जरूरत नहीं हमारे सामने आज कई ऐसे उदाहरण हैं। इस चुनौती से

लड़ते, अपने कुबेर को संघर्ष करते देखते, लगभग एक साल लगा मुझे कहानी को वहाँ तक पहुँचाने में।

मैं अपने लेखन में सकारात्मकता की पैरवी करती हूँ, गरीबी से लड़कर कोई आगे आता है तो यह कोई आदर्श नहीं, यथार्थ है। शू पॉलिश कर या फिर खिचड़ी बनाकर जीविका अर्जन करके जब ये लोग अपने लक्ष्य तक पहुँचते हैं, दुनिया चमत्कृत महसूस करती है, तब मेरा कुबेरमयी विचार सार्थक हो जाता है। कुबेर आज की दुनिया का यथार्थ है सिर्फ आदर्श नहीं है और अगर आदर्श भी मान लिया जाए तो सकारात्मक संदेश भी तो एक पहलू है जीवन का। मुझे खुशी है कि कुबेर ने आलोचना के क्षेत्र में हलचल की है और मुझे अपने खट्टे–मीठे स्वाद से परिचित करवाया।

हंसादीप जी आपने भारतीय और अंतरराष्ट्रीय परिवेश में जीवन जिया है। आप इन दोनों परिवेशों में नारी–जीवन की स्थितियों में क्या अंतर पाती हैं, और इस अंतर को हिंदी पाठकों तक पहुंचाने के प्रयास में आप कहाँ तक सफल रही हैं ?

हंसादीप : दीपक जी, विश्व के अत्यधिक गरीब और पिछड़े इलाके से लेकर विश्व के अत्यधिक धनी और विकसित इलाके में रहकर मैंने यह अनुभव किया है कि स्त्री बहुत शक्तिशाली है। 'नो मीन्स नो', 'मीटू' जैसे शब्दों ने तो हमें अब ताकत दी है लेकिन वर्षों पहले भी झाँसी की रानी थी, आज भी कोई कमी नहीं हैं झाँसी की रानियों की। फर्क सिर्फ इतना है कि लड़ने के लिये उनके सामने फिरंगी नहीं हैं, उनके अपने हैं और वे खुद्दारी से लड़ रही हैं। हम सब खुली आँखों से देख रहे हैं कि आज की महिलाएँ पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही हैं।

भारतीय स्त्री और पश्चिमी स्त्री के संदर्भ में मैं एक ही बात कहना चाहती हूँ कि दोनों के क्षेत्र अलग हैं पर मूलभूत मानसिकता वही है। मसलन, आज के भारत की बात न करूँ तो भी आज से साठ साल पहले भी, जिस गाँव में मैंने जन्म लिया वहाँ भी पुरुष सत्ता तो थी पर सारे अधिकार तो महिलाओं के पास थे। वे मना कर दें तो मजाल है कि कोई कदम उठा लिया जाए। मान भी लें कि यह हमारे घरों में था पर यकीन मानिए कि एक आदिवासी युवती भी जो उस जमाने में हमारे घर काम करती थी, वह भी आए दिन शराब पीए हुए अपने पति की पिटाई कर देती थी और फिर इसलिये रोती थी कि

"वह ऐसा काम करता है कि मुझे उसे मारना पड़ता है।" और फिर आज की बात करते हुए विदेश में पली कई लड़कियों को देखती हूँ. .. वे सारे अंदर बाहर के काम विशेषज्ञता के साथ करती हैं। एक नहीं हजारों काम, यह सब वे कैसे कर पातीं अगर अपने साथी पति से उनकी आपसी समझ, साथ–साथ बढ़ने की नहीं होती। नारी–पुरूष की इस समानता के उदाहरण बहुलता से हमारे आसपास मिल जाएँगे। बेशक, तब यह धारणा बलवती होती है कि किसी भी देश में और किसी भी परिवेश में, नारी अगर ठान ले, तो स्वयं को एक पिलर की तरह मजबूत बना लेती है। यह हर उस महिला ने किया है जो अपने पैरों पर खड़ी है और रचनात्मक कार्यों से स्वयं को ऊर्जित कर रही है। मैं एक बात स्पष्ट कर दूँ कि मैं बलात्कार पीड़ितों या फिर घरेलू हिंसा जैसे बिंदुओं को यहाँ सम्मिलित नहीं कर रही हूँ क्योंकि वे अपराध हैं और उन्हें अपराधों की श्रेणी में रखा जाना चाहिए। अशिक्षा की वजह से भारतीय नारी ने बहुत कुछ झेला है, कठिन परिस्थितियों का सामना किया है व आज एक ताकत के रूप में उभर कर सामने आयी है। भारतीय नारी ताकत हो या विदेशी नारी ताकत, अब तो सब परदे से बाहर आकर पूरी ताकत से काम कर रही हैं। आज की स्त्री इतनी सक्षम हो गयी है कि स्वयं अपनी लड़ाई लड़ने के लिये आगे आ रही है। चाहे ठेठ देहात हो या महानगर, महिला स्वयं जागरुक होकर, अपने पंखों से उड़ान भरने के लिए खुद ही आकाश में छलांग लगाने को तैयार हो रही है। शायद इसी कारण मेरे नारी पात्र असहाय नहीं होते, रोते–गाते बैठे नहीं रहते, जो करते हैं अपने साहस और कर्मठता से करते हैं। हाँ, कहीं–कहीं पुरुषों पर हावी होते महिला पात्र भी हैं, जो मुख्यधारा से अलग अपनी सच्चाई को उजागर करने का दु:साहस करते हैं।

आज अमेरिका या कनाडा में ही नहीं, भारत में भी कामकाजी दंपत्ति एक साथ किचन में काम करके एक साथ बच्चों का, घर का दायित्व निर्वहन कर रहे हैं। जीवन के अलग–अलग पड़ावों पर, अलग–अलग देशों के अनुभवों से मैंने महसूस किया है कि भारतीय स्त्री अधिक मजबूत है, अधिक मेहनती है, अधिक समझदार व होशियार भी है। इसका सबसे बड़ा कारण है उसकी कर्तव्यपरायणता एवं वह संस्कृति जिसमें उसने साँसें ली हैं। उसके कंधे इतने मजबूत हैं कि घर और बाहर दोनों जगहों का काम करके घर को, समाज को और

देश को सँवारने में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। हर इंसान को अपने रास्ते खुद ही बनाने पड़ते हैं। अगर मैं कहूँ कि यहाँ अधिक आजादी है भारत में नहीं तो वह सिर्फ शिक्षा का ही अंतर होगा। आज जैसे–जैसे भारत में नारी शिक्षित हो रही है, वैसे–वैसे उसके रास्ते आसान हो रहे हैं। परतंत्रता व निर्भरता की बेड़ियाँ ही नहीं हों तो फिर स्थिति खराब हो ही नहीं सकती। मैंने अनुभव किया है कि भारतीय या अंतरराष्ट्रीय, कैसा भी परिवेश हो अगर नारी अपने स्व के साथ जीना चाहती है तो अपनी स्थिति में सुधार कर ही लेती है।

साहित्य को समाज का दर्पण माना जाता है। इस संदर्भ में कथा–साहित्य के विभिन्न पात्रों के साथ सामंजस्य बनाने में निजता का क्या प्रभाव होता है ?

हंसादीप : मैं सोचती हूँ दीपक जी कि लेखक कहीं से भी कथ्य ले, किसी भी पात्र को अपनी कहानी में स्थान दे, उसे वह ज्यों का त्यों चित्रित नहीं करता। उसमें लेखक की कल्पना उसकी विचारशीलता व उसकी सोच सदैव ही हावी रहती है। उस चरित्र के साथ लेखक इतना घुलमिल जाता है कि तब उसे यह ध्यान नहीं रहता कि यह उसकी कहानी का चरित्र है, वह स्वयं नहीं। मुझे याद है जब मैं बंद मुट्ठी उपन्यास लिख रही थी तब मुझे कक्षा में, कक्षा से बाहर हर जगह सैम और तान्या दिखाई देते थे। वह मेरी कल्पना थी और मैं ही उसे साकार रूप में देखती थी। कहानी पढ़ने के बाद भी किसी और को वे पात्र वहाँ दिखाई नहीं देंगे।कहने का तात्पर्य है कि वे लेखक के अपने बनाए हुए पात्र हैं, चरित्र हैं जो कहानी के साथ–साथ, लेखक के साथ भी कदम से कदम मिलाकर चलते हैं। बहुत कुछ बाहरी दुनिया का होने के बावजूद लेखक की अपनी सोच का मुलम्मा तो कथ्य पर चढ़ता ही है। समाज की सोच, समाज की विसंगतियाँ और समाज के संगठन–विघटन के तार्किक पहलुओं के साथ लेखक की अपनी अनुभूतियाँ उजागर होती हैं।वैसे भी लेखक जो लिखता है वह किसी वाद के घेरे में बंधकर नहीं लिखता, अपने आसपास जो देखता है वही लिखता है, उन पात्रों को अपने भीतर जीने की आजादी दे कर, वह अपनी रचना को पूर्णता देता है।

वर्तमान समय में हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार–प्रसार में नवीनतम सूचना–प्रौद्योगिकी तकनीक का क्या योगदान है ?

हंसादीप : दीपक जी,सूचना–प्रौद्योगिकी तकनीक के कारण ही मेरा आपसे परिचय हुआ। भारत से 1992 में जब मैं न्यूयॉर्क आयी थी तब भारत में पत्र–पत्रिकाओं व लेखन से संपर्क लाख चाहने पर भी नहीं रह पाया था। एक–दो साल तक रचनाएँ डाक से भेजीं लेकिन वे कहीं पहुँची ही नहीं। और तब, सिर्फ यहाँ की स्थानीय पत्रिकाओं में ही अपनी रचनाएँ भेज पाती थी। अब लेखन की निरंतरता इसलिये भी है कि हम ईमेल से रचनाएँ भेज पा रहे हैं, वे निरंतर प्रकाशित हो रही हैं व समकालीन रचनाकारों तक, समालोचकों तक पहुँचने लगी हैं। सोशल मीडिया पर कई रचनाकार मित्र बन रहे हैं और इस तरह एक दूसरे की सराहना से रचनाधर्मिता को प्रोत्साहन मिल रहा है। सूचना–प्रौद्योगिकी तकनीककी वजह से, हिंदी को ग्लोबल देखकर बहुत अच्छा लग रहा है। हिंदी भाषा से संबंधित हर चीज अब सर्वसुलभ है, हर चीज अब आनलाइन उपलब्ध है। हिंदी भाषा पढ़ाई जा रही है, आनलाइन कक्षाएँ भी हो रही हैं, यूट्यूब पर सीखने के लिये कई वीडियो लगाए जा रहे हैं। किसी भी शब्द की जाँच–परख करनी हो तो गूगल कर लो। सब कुछ तो उंगलियों की पोरों तक सिमट कर आ गया है। यहाँ तक कि कई साहित्यकारों की रचनाएँ भी ऑनलाइन उपलब्ध होने से साहित्य का प्रचार–प्रसार तेजी से हो रहा है। कोई एक श्रेष्ठ रचना कहीं प्रकाशित होती है तो तुरंत इच्छुक पाठक उसका आस्वादन कर लेते हैं व अपनी राय भी जाहिर कर देते हैं। मैं सोचती हूँ कि इससे अच्छा प्रचार–प्रसार पहले कभी था ही नहीं जो आज है व उम्मीद करती हूँ कि यह बेहतर बनेगा।

हंसा जी बंद मुट्ठी उपन्यास में कथानक तो भारत, सिंगापुर और कनाडा के परिवेश का है पर तान्या के माता–पिता का चरित्र भारतीय समाज की रूढ़िवादी और परम्परावादी मानसिकता को प्रदर्शित करती है। क्या आप सहमत हैं ?

हंसादीप : बंद मुट्ठी उपन्यास में कथानक के अनुसार तान्या के माता–पिता ने अपने जीवन के कई साल भारत में ही बिताए हैं। ऐसी स्थिति में उनकी सोच पूरी तरह से भारतीय है। निःसंदेह, एक परिपक्व उम्र के बाद अपनी सोच बदलना मुमकिन नहीं हो पाता। चाहे आप किसी भी देश में चले जाएँ, अपनी वेशभूषा, अपनी भाषा बदली जा सकती है लेकिन विचारों और संस्कारों की गहरी पैठ को बदलना संभव नहीं हो पाता। और खासतौर से तब, जब वह बच्चों की शादी

से या उनके जीवन से जुड़ी हो तो उस सोच को बदलना चाहकर भी नहीं बदल पाते माता–पिता। मेरे ख्याल में, उनके इस चरित्र को लाते हुए मैं अपने बारे में सोचती थी कि मेरे अंदर जिन सिद्धांतों को जगह मिल गयी है, क्या वह कभी खत्म हो सकती है, शायद नहीं। एक छोटा सा उदाहरण दूँ आपको... जैसे कि बचपन से जैन परंपराओं का पालन करते हुए शुद्ध शाकाहारी खाना खाया है तो भारत छोड़ने के बरसों बाद भी आज तक कभी जैन भोजन पद्धति को छोड़ा नहीं। यहाँ के माहौल में भी आज तक कभी अंडे वाले केक को छू नहीं पायी, तो किसी मांसाहारी चीज को खाने के बारे में सोचने का तो सवाल ही नहीं उठता। तो अगर कोई स्थिति मेरे साथ ऐसी होती तो मेरी प्रतिक्रिया थोड़ी कम,या थोड़ी अधिक, शायद वैसी ही होती जैसी तान्या के माता–पिता की थी। इन रिश्तों को स्वीकार कर लेना एक अलग बात होती है और मन से अपना लेना दूसरी बात। इसे हम चाहें तो संकुचित मानसिकता कह सकते हैं लेकिन समय के साथ इस भावना की तीव्रता निश्चित रूप से कम हो जाती है। समय तो बड़े से बड़े घावों को भरने में सक्षम होता है। और यही बात होती है तान्या के माता–पिता के साथ। जैसे–जैसे समय आगे बढ़ता है वैसे–वैसे उनका गुस्से का आवेग घटता जाता है। वे अपनी नातिन रिया से बातें करके तान्या तक पहुँचने की कोशिश करते हैं और रिश्तों की डोर को टूटने नहीं देते।

इस उपन्यास में तान्या की विपरीत परिस्थितियों में सैम की सकारात्मक सोच और पत्नी के प्रति समर्पण से समाज में आप बताना चाहती हैं कि दाम्पत्य जीवन में स्त्री और पुरुष का सकारात्मक दृष्टिकोण सब दुःखों का निवारण कर देता है।इस पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है ?

हंसादीप : दीपक जी, किसी एक जीवनसाथी का सकारात्मक सोच एक हद तक परेशानियों को, दुःखों को कम कर देता है और तब रिश्तों की उलझनों का खिंचाव निश्चित रूप से कम होता है। अगर दोनों ही नकारात्मक रहें तो फिर टूटन के सिवा कुछ नहीं बचता। यही कारण था कि विपरीत परिस्थितियों में भी सैम के संपूर्ण साथ से तान्या अपने निर्णयों पर अटल रह पायी और आखिर में प्यार की जीत हुई। यह इंसान की फितरत में शामिल है कि वह बुरा पहले सोच लेता है। जिससे अधिक प्यार करता है उसे लेकर बुरी भावनाएँ हमेशा पीछा करती हैं। इसी कारण चाह कर भी समझौता नहीं कर पाता

परिस्थितियों से। ऐसी भावनाएँ अमूमन नारी जाति की सोच में अधिकता लिये हुए होती हैं। तान्या, तान्या की मम्मी ये उदाहरण हैं कि वे एक दूसरे से बहुत प्यार करते हैं इसीलिये दूरगामी बुरे ख्याल उनका पीछा नहीं छोड़ते और रिश्तों में खिंचाव लगातार बना रहता है। जिससे अधिक लगाव नहीं उसके बारे में अच्छे–बुरे ख्यालों के कोई मायने होते ही नहीं। तान्या की नकारात्मकता को सैम एक हद तक दूर करता है, लेकिन तान्या की मम्मी को उसके पिता के द्वारा ऐसा कोई समर्थन नहीं मिलता, बल्कि और अधिक उकसाया जाता है। निश्चित ही सैम की सकारात्मकता से दाम्पत्य जीवन बना रहा, वरना टूटने की कगार पर तो खड़े ही थे वे दोनों।

'बंद मुट्ठी' उपन्यास की कथा तान्या और सैम की जिस छटपटाहट से शुरू होती होती है, समापन में वह दुगुनी खुशी या उत्साह में बदल जाती है। इस कथ्य की पृष्ठभूमि में कौन–सी घटना रही है ?

हंसादीप : दीपक जी, सच कहूँ तो बंद मुट्ठी उपन्यास की कहानी के इस समापन पर मेरी अपनी सोच का प्रभाव लगता है क्योंकि मैं एक आशावादी इंसान हूँ। किसी को मैं दुःख में छोड़कर अलग नहीं हो पाती, ऐसा ही संबंध अपने पात्रों के साथ भी बन जाता है। यही वजह थी कि जितने तनाव की स्थिति में मैं उपन्यास शुरू करती हूँ, खुशी के पड़ाव पर आ कर पात्रों से विदा लेती हूँ। शुरू से आखिर तक सैम और तान्या एक मानसिक द्वंद में लगातार रहते हैं। जिस तरह लगातार द्वंद में कहानी आगे बढ़ती है उसमें खुशी आना जीवन का एक हिस्सा है। सकारात्मक सोच जीवन मूल्यों को बेहद प्रभावित करती है, लेखक को भी, पाठक को भी। और फिर उपन्यास का कैनवास इतना बड़ा होता है कि अंत तक आते–आते अगर कोई घटना होगी तो भी वह प्रवाह के साथ बदलने का सामर्थ्य रखती है। पात्रों का व्यवहार, चरित्र सब कुछ किसी न किसी बदलाव के साथ उपस्थित होने लगता है। कभी–कभी भाषायी प्रयोग भी यह अहसास दिलाते हैं कि पात्रों में किस करवट बैठने की क्षमता है। तो मैं यही कहूँगी कि कोई एक घटना नहीं, घटनाओं की कतार होती है जो प्रारंभ और अंत के बीच में आकर अपना प्रभाव छोड़ जाती हैं।

'बंद मुट्ठी' में आपने अनेक सूक्तियों में भी अपनी बात की है, पर मेरे विचार से इस उपन्यास के कथा की मूल उक्ति है– 'बच्चों की खुशी में खुश रहना ही मां का प्यार है।'

हंसादीप : सदा से ही पीढ़ियों का अंतर रहा है दीपक जी, और रहेगा। इन दिनों वह खाई और भी अधिक बढ़ गयी है जब सोशल होने के कई अन्य साधन युवा पीढ़ी के लिये उपलब्ध हो रहे हैं। बच्चों के पास अपनी खुशियों को ढूँढने के कई तरीके हैं जिनकी भूलभूलैया में खोकर वे अपने जीवन को गलत दिशा में ले जा सकते हैं। इसी बात का डर माता–पिता को खाए जाता है और वे कठोर हो जाते हैं। समय की मांग है कि बच्चे बदल रहे हैं तो माता–पिता को भी बदलना चाहिए। इस उपन्यास में तान्या की सुखी जिंदगी भी माता–पिता को खुश नहीं कर पा रही थी। तब शायद एक अहं था, जो रिश्तों के बीच में आ रहा था। जैसे ही उस अहं का भाव मद्दम होता है रिश्ते सुलझने लगते है। निश्चित ही मैं यह नहीं कहना चाहती हूँ कि बच्चे हमेशा सहीहोते हैं या माता–पिता हमेशा सही होते हैं लेकिन कई बार ऐसा होता है कि बड़ों को बच्चों की खुशी के लिये अपने स्व को छोड़ना पड़ता है व कई बार बच्चे भी अपनी खुशियों से परे हटकर माता–पिता के बारे में सोचते हैं। ताली दोनों हाथों से ही बजनी चाहिए, लेकिन कभी–कभी दूसरे हाथ को थोड़ी प्रतीक्षा भी करनी पड़ सकती है, चाहे फिर वह एक हाथ बच्चों का हो या फिर माता–पिता का हो।

यह उपन्यास जहाँ कनाडा के प्राकृतिक जीवन की जानकारी देता है वहीं यहाँ अध्ययन के लिए आने वाले विद्यार्थियों की विविध समस्याओं को भी उठाता है। क्या विद्यार्थियों की समस्याओं का समाधान परमानेंट रेसीडेंसी से संभव मानती हैं ?

हंसादीप : चूँकि बंद मुट्ठी उपन्यास के दोनों प्रमुख पात्र, तान्या व सैम यूनिवर्सिटी के इंटरनेशनल छात्र हैं। मेरा सामना इन छात्रों की मजबूरियों से आए दिन होता रहता है, इसलिए मेरे लिये इन छात्रों की इस बड़ी समस्या पर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना जरूरी था, जो वास्तव में माता–पिता के लिये भी एक बड़ी धनराशि की व्यवस्था लगातार चार सालों तक करते रहने की विवशता को कुछ हद तक राहत देता है। इन विद्यार्थियों की सबसे बड़ी समस्या होती है आर्थिक बोझ। इंटरनेशनल छात्रों की फीस के आँकड़े आसमान को

छूते हैं। उस पर रहना–खाना–आना–जाना सब मिलकर इस बोझ को बढ़ाते ही रहते हैं। इसे कम करने के लिये काम करने के अवसर भी बहुत कम होते हैं, क्योंकि उनके पास वर्क परमिट नहीं होता। इस वजह से इन छात्रों के बाहर काम करके कुछ पैसा कमाने के अवसर सीमित हो जाते हैं। इसका एक ही सरल उपाय हो जाता है परमानेंट रेसीडेंसी। तब फीस तो कम होती ही है, बाहर काम करने के अवसर बहुत अधिक मिलते हैं, साथ ही पढ़ाई करते हुए कई जगहों पर काम का अनुभव आगे जाकर काफी मदद करता है। इसके अलावा भी, यहाँ से पढ़ाई खत्म करने के बाद 95 प्रतिशत छात्र यहीं रहकर अपना काम करते हैं। ऐसे में डिग्री मिलते ही कागजात तैयार हों तो तत्काल नौकरी मिल जाती है। चूँकि कागजात बनने में साल–दो साल समय तो लगता ही है, इसीलिये अपने दूसरे या तीसरे साल तक कई छात्र परमानेंट रेसीडेंसी के लिये आवेदन कर देते हैं, ताकि डिग्री मिलते ही वे काम करना शुरू कर सकें। ऐसा भी नहीं है कि परमानेंट रेसीडेंसी हो तो कोई समस्या नहीं रहती, पर हाँ एक बड़े मुद्दे को अपना समाधान मिल जाता है। कोई जरूरी नहीं कि परमानेंट रेसीडेंसी लेने के बाद वे यहीं रहें, चाहें तो कभी भी जा सकते हैं, लेकिन इस लंबे समय को कागजात बनवा कर कुछ हद तक आरामदेह बना सकते हैं, जैसे कैंपस के छोटे कमरों के आवास से बाहर निकलकर बाहर कोई फ्लैट किराए से लेकर रह सकते हैं, या फिर गर्मियों के अवकाश में पूरे समय काम करके अपनी फीस का जुगाड़ कर सकते हैं। बस यही कारण था कि मैंने परमानेंट रेसीडेंसी के इस बिंदु को कहानी में जगह दी थी।

अपनी कृतियों के प्रकाशन हेतु संपर्क करें...

लागत आपकी, श्रम हमारा!
75 फीसदी प्रतियाँ आपकी, 25 प्रतिशत हमारी!!

विशेष : आपकी कृतियों व उन पर विद्वानों द्वारा लिखित समीक्षाओं द्वारा विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में व्यापक प्रचार।

मधुराक्षर प्रकाशन
जिला कारागार के पीछे, मनोहर नगर फतेहपुर (उ0प्र0) 212 601
madhurakshar@gmail.com +91 9918695656

समीक्षा

मानव मन के गहरे अँधेरे कोनों की पड़ताल

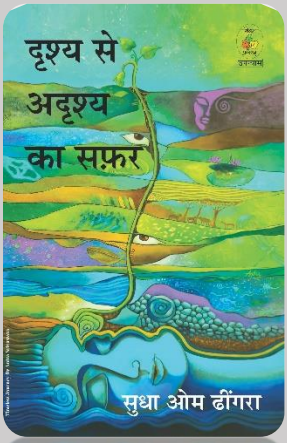

पुस्तक : दृश्य से अदृश्य का सफर (उपन्यास), लेखक : सुधा ओम ढींगरा, मूल्य : 150 रुपये, प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, म.प्र. 466001

पंकज सुबीर
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र., 466001
subeerin@gmail.com

हिंदी कथा संसार का दायरा वैसे तो दिनों–दिन विस्तृत होता जा रहा है, फिर भी अभी कई विषय ऐसे हैं, जिन पर बहुत ज्यादा काम अभी तक सामने नहीं आया है। जबकि इन्हीं विषयों पर विदेशों में बहुत काम हुआ है और अभी भी हो रहा है। नई सदी में हिंदी कथा साहित्य ने कई नए विषयों की जमीनें तोड़ कर वहाँ कहानियों और उपन्यासों की फसल उगाई है। कई ऐसे विषय जिन पर पहले बहुत

कम बात की जाती थीं, गिने–चुने उदाहरण जिनके मिलते थे, अब उन विषयों पर बहुत काम हो रहा है और लगभग अछूत समझे जाने वाले उन विषयों को नई सदी में सामने आए लेखक खूब उठा रहे हैं। नई सदी का साहित्य एकदम नए नजरिये का साहित्य है, जिसमें कहीं किसी भी विषय से परहेज करने वाली बात दिखाई नहीं देती है। शोध करके लिखने की प्रवृत्ति भी इधर काफी दिखाई देती है। क्योंकि इंटरनेट के कारण शोध कार्य में कुछ आसानी हो गई है। इन दिनों जो उपन्यास सामने आ रहे हैं, वह बहुत अध्ययन और शोध से उपजे हुए होते हैं, उनके पीछे किया गया परिश्रम साफ दिखाई देता है।

सुधा ओम ढींगरा का अधिकांश महत्त्वपूर्ण लेखन नई सदी में ही सामने आया है तथा उनकी महत्त्वपूर्ण तथा चर्चित किताबें भी नई सदी में ही सामने आई हैं। इसीलिए उनको नई सदी में सामने आई कथा–पीढ़ी के साथ ही रेखांकित करना होगा। हिंदी में कथा–समय से ज्यादा वरिष्ठ–कनिष्ठ के दायरों में काम होता है, जो ठीक नहीं है। असल में एक कथा–समय को ही रेखांकित किया जाना चाहिए। उस कथा–समय में सक्रिय कौन था, कौन अपने समय के परिवर्तनों पर नजर रखे हुए था, तथा उसकी रचनाओं में उस परिवर्तन की आहट महसूस हो रही थी या नहींय यह सब देखा जाना बहुत जरूरी है। कई सारे वरिष्ठ लेखक ऐसे हैं, जिनकी शैली, शिल्प तथा विषयों में नवीनता दिखाई दे रही है, जबकि कई युवा लेखक ऐसे हैं, जो पारंपरिक ढर्रे पर ही चल रहे हैं, ऐसे में आप नए कथा–समय की बात करते समय किसको उसमें शामिल करोगे। उस लेखक को जो नया है या उस लेखक को जिसका लेखन नया है ?

सुधा ओम ढींगरा का यह दूसरा उपन्यास है जो सामने आया है। इससे पहले उनका उपन्यास 'नक्काशीदार केबिनेट' लगभग पाँच साले पहले आया था, और पाठकों तथा आलोचकों दोनों ने इसे खूब सराहा था। उस उपन्यास की कहानी भारत और अमेरिका के बीच आवाजाही करती रहती थी। एक तूफान को प्रतीक बना कर सुधा ओम ढींगरा ने कई सारे तूफानों की चर्चा उस उपन्यास में की थी। 'दृश्य से अदृश्य का सफर' सुधा ओम ढींगरा का नया उपन्यास है, जो भारत में कोरोना की दूसरी लहर की भयावहता के दौरान सामने आया है। यह उपन्यास एक ऐसे विषय पर आधारित है, जिस पर

हिंदी में बहुत कम काम हुआ है। कुछेक उपन्यास ही इस विषय पर दिखाई देते हैं। मनोविज्ञान पर तो बहुत काम दिखाई देता है, लेकिन मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर बहुत कम ही काम इधर दिखता है। यदि दिखता भी है तो वह इतना कठिन और जटिल है कि हिंदी के पाठक के लिए उसे समझना भी एक समस्या हो जाता है। यह विषय इतना जटिल है कि इस पर लिखते समय कठिन हो जाने की समस्या से पार पाना मुश्किल हो जाता है। लेकिन 'दृश्य से अदृश्य का सफर' एक जटिल विषय पर सरलता से लिखा गया उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखक ने मनोवैज्ञानिक समस्या को विषय बनाया है और इस कठिन विषय को बहुत सहजता के साथ पाठक के सामने रख दिया है। पाठक इस उपन्यास को पढ़ते हुए जटिलता के चक्रव्यूह में नहीं उलझता है तथा किसी प्रवाहमय धारा के साथ बहता हुआ चला जाता है। कठिन विषय पर सरल उपन्यास लिख देना, लेखक की पहली सफलता है।

'दृश्य से अदृश्य का सफर' की कहानी प्रारंभ तो होती है कोरोना की उस पहली लहर के साथ, जो 2020 में पूरे विश्व में एक साथ आई थी, लेकिन कहानी चूँकि कोरोना की नहीं है कुछ और है, इसलिए बहुत जल्द कहानी कोरोना को छोड़कर अपने मूल विषय पर आ जाती है। सुधा ओम ढींगरा ने अपने पिछले उपन्यास की तरह इसमें भी प्रतीक के रूप में कोरोना का उपयोग किया है, किन्तु उस प्रतीक के माध्यम से बिलकुल अलग कहानी कही है। पिछले उपन्यास में तूफान था इसमें कोरोना है। वह उपन्यास तूफान की कहानी नहीं था, यह भी कोरोना की कहानी नहीं है। लेखक ने केवल टेकऑफ के लिए तूफान या कोरोना का केवल रनवे की तरह उपयोग किया है, एक बार जब कहानी रनवे को छोड़ देती है, तो फिर वह दूसरी दुनिया में पहुँच जाती है। फिर उस रनवे की कोई कहानी नहीं, अब उस आसमान की कहानी है, जिसमें कहानी उड़ रही है। रनवे अंत में आता है जब कहानी वापस आकर लैंड करती है। यह बहुत ही दिलचस्प शैली है कहानी कहने की। किसी प्रतीक को इतनी खूबसूरती के साथ उपयोग करना कि कहानी के मूल विषय के साथ उसका तेल–पानी वाला रिश्ता बना रहे, साथ भी रहें और अलग भी रहें। कहानी असल में घटना नहीं होती है, कहानी का विषय जरूर घटना से आ सकता है। लेकिनय उस विषय का ट्रीटमेंट लेखक किस प्रकार

कर रहा है, वह किसी प्रकार उस विषय का उपयोग कर रहा है कि पढ़ते समय पाठक को वही कहानी लगे घटना नहीं लगे। यह उपन्यास इस शैली को समझने का एक अच्छा उदाहरण है किय किस प्रकार किसी घटना का उपयोग कहानी में किया जाता है।

प्रवासी भारतीयों के लेखन ने हिंदी में एक नई दुनिया के झरोखे खोलने का काम किया है। यह लेखन भारतीय की दृष्टि से उस देश को देखता है, इसीलिए यह लेखन भारतीय पाठकों के अंदर पैठने में सफल रहता है। 'दृश्य से अदृश्य का सफर' का सफर भी एक ऐसा ही उपन्यास है। यह उपन्यास कहानी तो अमेरिका की कहता है, किंतु नजरिया भारत का ही रहता है। कहानी का मुख्य पात्र अमेरिका में बसा हुआ भारतीय है। उस पर विषय ऐसा है, जो दुनिया के हर हिस्से में एक सा ही है। मनोवैज्ञानिक समस्याएँ जिनको हम अज्ञानतावश बीमारी भी कहते हैं। यह उपन्यास उन लोगों को अवश्य पढ़ना चाहिए जो मनोवैज्ञानिक समस्याओं को बीमारी कहते हैं, समझते हैं। यह उपन्यास मनोवैज्ञानिक समस्याओं को देखने के नजरिये में आमूलचूल परिवर्तन ला देता है। इस उपन्यास को पढ़ने के बाद किसी ऐसे व्यक्ति को देखने का पूरा दृष्टिकोण बदल जाता है। लेखक की एक और सफलता यह है कि यह उपन्यास बहुत अच्छे से समझाता है कि मनोवैज्ञानिक समस्याएँ असल में जीवन में आ रही कुछ बड़ी मुश्किलों, असाधारण घटनाक्रमों तथा इन सबसे उपजे भय का ही परिणाम होती हैं। जब यह भय समाप्त हो जाता है तो समस्याएँ भी समाप्त हो जाती हैं। यह इस उपन्यास का सबसे महत्त्वपूर्ण तथा जरूरी बिंदु हैं। लेखक ने मनोवैज्ञानिक समस्या से जूझ रहे व्यक्ति के अंदर बैठे भय को परत दर परत खोला है। और न केवल खोला है बल्कि समाधान प्रद तरीके से खोला है। साहित्य का कार्य भी तो यही होता है कि वह समस्या तक न रुके बल्कि आगे बढ़े वहाँ तक, जहाँ समस्या का समाधान है।

कहानी भारतीय मूल की डॉ. लता भार्गव के अनुभवों का सहारा लेकर आगे बढ़ती है। डॉ. लता भार्गव जो एक साइकॉलॉजिस्ट हैं तथा फैमिली काउंसलिंग का काम करती हैं। उनके स्मृति कोश में कुछ ऐसे जटिल केस सुरक्षित हैं, जो सबसे चुनौतीपूर्ण केस थे उनके लिए। कोरोना के कारण चारों तरफ पसरे हुए लॉकडाउन से जो फुरसत का समय मिला है, उसमें डॉ. लता भार्गव उन केसिज की

यादों के गलियारे में जाती हैं, और याद करती हैं उस समय को। कोरोना इस उपन्यास के लिए रनवे का काम करता है, जैसा कि मैंने पहले भी कहा। रनवे इस प्रकार कि कोरोना समय में ही एक पुराना केस फिर से खुलता है। ठीक हो चुके व्यक्ति के जीवन में कोरोना के दहशत भरे समय में समस्याएँ फिर से आ जाती हैं। वह एक बार फिर डॉ. लता भार्गव के संपर्क में आता है और उसके बहाने कहानी कोरोना के धरातल को छोड़कर मनोविज्ञान की दुनिया में पहुँच जाती है। जाहिर सी बात है कि यह जो प्रस्थान है, यह फ्लैशबैक के माध्यम से ही होता है, क्योंकि सारे पुराने केस कहीं यादों की डायरी में सुरक्षित हैं। डॉ. लता भार्गव उस डायरी के पन्ने पलटती जाती हैं और पाठक रू–ब–रू होता रहता है उन गहरी अँधेरी सुरंगों से, जिन्हें मनोवैज्ञानिक सम्स्याएँ कहा जाता है।

इस उपन्यास में डॉ. लता भार्गव के तीन पुराने केसिज की मदद से मनोविज्ञान की जटिल पहेली को बहुत सरल तरीके से पाठकों के सामने प्रस्तुत किया गया है। पहला केस डॉली पार्टन है, दूसरा सायरा का है तथा तीसरा अनाम महिला का है। पहले दोनों नाम भी असल नाम नहीं है बल्कि डॉ. लता भार्गव द्वारा इन महिलाओं की विशेषताओं के आधार पर दिए गए नाम हैं। पहली का चेहरा–मोहरा मशहूर अमेरिकन गायिका डॉली पार्टन से मिलता है, इसलिए उसे वही नाम से बुलाती हैं डॉ. लता भार्गव और दूसरी भारतीय अभिनेत्री सायरा बानो से मिलती–जुलती शक्ल की है, इसलिए उसे सायरा नाम मिला। तीनों कहानियाँ महिलाओं की ही हैं। असल में सभ्यता के विकास के क्रम में सबसे ज्यादा तनाव महिलाओं के ही हिस्से में आया है। जैसे–जैसे यह विकास का क्रम आगे बढ़ रहा है, वैसे–वैसे यह तनाव भी बढ़ रहा है। इसलिए मनोवैज्ञानिक समस्याओं का सामना भी पुरुषों की तुलना में महिलाओं को ही अधिक करना पड़ता है। बल्कि यह कहा जाए तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि महिलाओं की समस्याओं के मूल में कहीं न कहीं पुरुष ही होता है। कम से कम इन तीन कहानियों से गुँथे हुए इस उपन्यास को पढ़ने के बाद तो यही कहा जा सकता है। पुरुष को यह समस्या कैसे हो सकती है, वह तो स्वयं ही समस्या है।

सुधा ओम ढींगरा ने उपन्यास में कोरोना समय में चल रही कथा के साथ इन तीन कहानियों को गूँथा है। जो कहानी कोरोना

समय में चल रही है, वह एक डॉक्टर परिवार की कथा है। परिवार में सभी सदस्य डॉक्टर हैं और सब अपने–अपने स्तर पर कोरोना के वॉरियर्स का कार्य कर रहे हैं। ऐसे में जब कहानी फ्लैशबैक से वापस वर्तमान में आती है, तो बहुत सारी नई सूचनाएँ, जानकारियाँ पाठकों को मिलती हैं। ऐसी सूचनाएँ जो बिलकुल नई हैं। लेकिन यह सूचनाएँ मुख्य कथा को बोझिल नहीं करतीं। कहीं ऐसा नहीं लगता है कि इनको कहानी में जबरन डाला गया है। यह सूचनाएँ बहुत सहजता से कहानी का हिस्सा बनते हुए आती रहती हैं। विदेश में बसे हुए चिकित्सकों के नजरिये से कोरोना समय को देखना इस उपन्यास का एक और रोचक पहलू है। भारतीय चिकित्सा तंत्र और विदेश के चिकित्सा तंत्र में क्या अंतर है, उसे इस उपन्यास को पढ़कर समझा जा सकता है। बहुत सूक्ष्म दृष्टि से लेखक ने वहाँ के चिकित्सा तंत्र की पड़ताल की है। और वह सारी जानकारियाँ संवादों के माध्यम से पाठक तक पहुँचती हैं। किसी विषय पर शोध करना अच्छी बात है, लेकिन उसके बाद सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य होता है, उस शोध के परिणामों को कहानी में कैसे पिरोया जाए। कहानी को शोध–पत्र हो जाने से बचाने के लिए यह सलीका बहुत आवश्यक रूप से आना ही चाहिए लेखक को। इस उपन्यास में सुधा ओम ढींगरा ने बहुत सलीके से उन सूचनाओं को कहानी में पिरोया है, जो शोध से प्राप्त सूचनाएँ हैं।

उपन्यास की एक विशेषता यह है कि भले ही तीन कहानियों के माध्यम से मनोविज्ञान की दुनिया की बात कही गई है, लेकिन यह तीनों कहानियाँ बिलकुल अलग–अलग कहानियाँ हैं। तीनों कहानियों में समस्या के मूल में अलग–अलग कारण हैं और इसी वजह से तीनों कहानियों में समस्या अलग–अलग रूप में सामने आती है। परिवार के ही सदस्यों द्वारा सामूहिक बलात्कार, एसिड अटैक तथा क्रूर एवं अत्याचारी पति यह तीन कारण तीन अलग–अलग कहानियों में हैं। तीनों का संत्रास इतना गहरा और भयावह है कि इसकी शिकार तीनों महिलाएँ मनोवैज्ञानिक समस्याओं से जूझने लगती हैं। और सामान्य स्तर पर नहीं बल्कि बहुत गंभीर स्तर पर। तीन अलग–अलग कहानियों में तीन बड़े कारणों को लेखक ने उठाया है। तीन कारण जो महिलाओं को पूरा जीवन किसी तूफान की तरह झकझोर कर रख देते हैं, और उसके बाद सामने आती हैं मनोवैज्ञानिक समस्याएँ। असल में यही

वह बिंदु है, जिस पर आकर कोरोना की कथा इन तीन महिलाओं की कहानी से एकाकार हो जाती है। जिस प्रकार इन महिलाओं के जीवन में झंझावात आता है, उसी प्रकार समूचे विश्व के जीवन में कोरोना नाम का झंझावात दस्तक देता है। और इसके बाद जिस प्रकार उन महिलाओं के जीवन में समस्याओं का प्रवेश होता है उसी प्रकार समूचे विश्व के लोगों के जीवन में समस्याओं को आगमन होता है। असल में लेखक ने बहुत गहरे उतर कर इस साम्य को स्थापित किया है। और कहीं न कहीं यह स्थापित करने की कोशिश की है कि कहीं भी, कुछ भी अकारण नहीं होता है, जो कुछ हो रहा है उसके पीछे कहीं न कहीं कुछ न कुछ कारण अवश्य होता है।

इस उपन्यास को तीन कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत मनोविज्ञान की समस्याओं के लिए नहीं पढ़ना चाहिए, इसको पढ़ना चाहिए उन समाधानों के लिए, जो तीनों कहानियों में डॉ. लता भार्गव के प्रयासों से सामने आते हैं। कम से कम भारत के पाठकों को तो इन समाधानों के बारे में पढ़ना ही चाहिए, क्योंकि भारत में ही मनोवैज्ञानिक सम्स्याओं को लेकर सबसे ज्यादा भ्रांतियाँ हैं। भारत में ही इन समस्याओं के बारे में जाने क्या–क्या सोचा और कहा जाता है। डॉ. लता भार्गव जिस प्रकार इन तीनों केसिज पर काम करती हैं, इन तीनों में परिणाम तक पहुँचती हैं, वह बहुत रोचक और दिलचस्प है। इस प्रकार के मामले किसी प्रकार हल किए जा सकते हैं, वह भी इस उपन्यास को पढ़ कर पता चलता है। वैसे तो तीनों ही प्रकरणों में समाधान वाला हिस्सा रोचक है, लेकिन तीसरा प्रकरण, जो अमेरिका में रह रही दक्षिण भारतीय महिला का प्रकरण है, उसमें डॉ. लता भार्गव द्वारा जिस प्रकार मामले को हल किया जाता है, वह बहुत दिलचस्प है। मनोवैज्ञानिक समस्या को कोई सायकॉलॉजिस्ट इस प्रकार भी हल करता है, यह उपन्यास को पढ़कर पाठक को ज्ञात होता है। असल में यह उपन्यास समाधान का उपन्यास है, समस्या का नहीं है, इसलिए इसे पढ़कर समाप्त कर लेने के बाद पाठक सकारात्मक रूप से बाहर आता है। सुप्रसिद्ध हिन्दी फिल्म 'खामोशी' में वहीदा रहमान एक नर्स के रूप में राजेश खन्ना की देखभाल करते हुए स्वयं समस्या से उलझ जाती है। इस उपन्यास को पढ़ते हुए डॉ. लता भार्गव में पाठक को इस फिल्म की नर्स राधा की कहानी दिखाई देने लगती है। मगर वास्तव में कहानी वैसी नहीं है।

उपन्यास की शैली सुधा ओम ढींगरा ने बहुत सहज और सरल रखी है। जब कहानी वर्तमान में होती है तो संवाद शैली से आगे बढ़ती है और जब फ्लैशबैक में होती है तो किस्सागोई की शैली में। लेखक दोनों ही शैलियों में सिद्धहस्त है इसलिए उपन्यास की पठनीयता इस आवाजाही में बरकरार रहती है। विशेषकर किस्सागोई में तो सुधा ओम ढींगरा बहुत कुशल हैं, इसलिए जब उपन्यास तीन बार फ्लैशबैक में जाता है, तो किस्सागोई शैली के चलते उपन्यास की रोचकता और बढ़ जाती है। तीनों फ्लैशबैक पाठक की आँखों के सामने चलचित्र की तरह गुजरते हैं। दृश्य दर दृश्य उपस्थित होते हुए। डॉली, सायरा और दक्षिण भारतीय महिला के स्कैच पाठक की आँखों के सामने बन जाते हैं। तीनों कहानियों को बहुत मेहनत से लेखक ने विजुअल माध्यम की तरह गढ़ा है। उपन्यास की भाषा को भी लेखक ने शैली की ही तरह बिलकुल सहज और सरल रखा है। आम बोलचाल की भाषा में संवाद गढ़े हैं, इस प्रकार की पढ़ते हुए पाठक को अपने ही लगते हैं। जो चिकित्सकीय ब्यौरे हैं वह भी इस प्रकार हैं कि पाठक को आसानी से समझ आ जाते हैं। इस प्रकार का जटिल विषय उठाते समय इतनी सहज और सरल भाषा तथा शैली लेना बहुत आवश्यक है, जिससे कृति जटिलता का शिकार न होने पाए।

कुल मिलाकर यह उपन्यास 'दृश्य से अदृश्य का सफर' मानव मन के गहरे अँधेरे कोनों की पड़ताल की कहानी है। सुधा ओम ढींगरा ने कुछ नए पन्नों को हिन्दी पाठक के सामने खोलने का कार्य इस उपन्यास के माध्यम से किया है। यह भी संयोग है कि कोरोना की पहली लहर के बाद लिखा गया यह उपन्यास जब सामने आया, तब भारत दूसरी लहर की भयावहता से जूझ रहा था। हिंदी में इस तरह के प्रयोग और होते रहें इसके लिए आवश्यक है कि इस तरह के प्रयोगों का स्वागत किया जाए। इस तरह की कृतियाँ जो एकरसता को तोड़ती हैं और कुछ नई दिशाओं की खिड़कियाँ खोलती हैं, इनके स्वागत करने से आने वाले समय में इस प्रकार के और प्रयोग सामने आएँगे। यह उपन्यास एक यात्रा है, उस अज्ञात की यात्रा, जो कुहासे में छिपा हुआ अज्ञात है। लेखक ने अपनी भाषा और शैली से इस यात्रा को दिलचस्प और रोचक बना दिया है।

कारण, धारण और तारण की हेतु

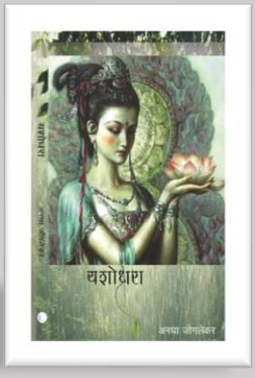

पुस्तक : यशोधरा (उपन्यास), लेखिका : अनघा जोगलेकर
प्रकाशक : कौटिल्य बुक्स, दरियागंज, नई दिल्ली, मूल्य : 250 रू

नूतन पाण्डेय
सहायक निदेशक,केंद्रीय हिंदी निदेशालय
शिक्षा मंत्रालय,भारत सरकार
pandeynutan91 @gmail.com

आधुनिक हिंदी साहित्य में नारी चरित्रों पर सृजन–परम्परा के कवियों में जिनका नाम सबसे पहले मस्तिष्क में आता है, वे हैं राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त। इसका सबसे बड़ा कारण शायद यह है कि उन्होंने पंचवटी, साकेत और यशोधरा जैसे काव्यग्रंथों के माध्यम से नारी के उस उदात्त पक्ष को समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है जो अनुकरणीय होने के बावजूद एक लंबे समय तक उपेक्षित रहे। गुप्त जी को नारी हृदय और मनोविज्ञान की गहरी समझ थी, जिस कारण अपनी सूक्ष्म–दृष्टि से उन्होंने उर्मिला और यशोधरा जैसे नारी पात्रों के मनोभावों

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

का सुंदर विश्लेषण करते हुए सामाजिक सोच को एक नई वैचारिक दृष्टि दी जो सदियों से पुरुष समाज के देवत्व रूप को देखती आई थी और वही देखने की इच्छुक भी थी। बहुत कम लोगों को ज्ञात होगा कि गुप्त जी को इन उपेक्षित नारी पात्रों पर लिखने की प्रेरणा महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' और टैगोर के 'काव्येर उपेक्षित नार्या' निबंध से प्राप्त हुई थी। रांगेय राघव ने अपने उपन्यास यशोधरा जीत गई में यशोधरा के उदात्त चरित्र का अंकन करते हुए गुप्त जी की इस परंपरा का अनुकरण किया। तत्पश्चात इस कड़ी को आगे बढ़ाया त्रिनिदाद के प्रवासी साहित्यकार डॉ. हरिशंकर आदेश ने। प्रो. हरिशंकर आदेश के महाकाव्य निर्वाण के मुख्य पात्र भले ही महात्मा बुद्ध हों, लेकिन वे इस ग्रंथ को लिखने की प्रेरणा यशोधरा के चरित्र से प्रभावित होना ही मानते हैं। उपर्युक्त ग्रंथों के अतिरिक्त मैथिलीशरण गुप्त से प्रेरणा लेकर यशोधरा और उस जैसे अन्य नारी पात्रों पर लिखी गईं छिटपुट कविताओं का इतिहास साहित्य में देखने को मिलता रहा। पौराणिक और ऐतिहासिक नारी पात्रों के गरिमामय चरित्र को आधुनिक चेतना युक्त नवीन आयाम देने की इस परम्परा को आगे बढाया है– अनघा जोगलेकर ने, जिनका उपन्यास 'यशोधरा' अभी हाल ही में कौटिल्य बुक्स दिल्ली से प्रकाशित हुआ है।

अनघा जोगलेकर ने नारी प्रधान इस उपन्यास में यशोधरा को त्याग और संयम की एक ऐसी मूर्ति के रूप में चित्रित किया है, जिसे भरे यौवनकाल में सिद्धार्थ द्वारा नवजात शिशु के साथ अर्धरात्रि में परित्यक्त कर दिया जाता है। स्वाभिमान की साथ सिद्धार्थ के प्रति असीम प्रेम का निर्वाह करते हुए यशोधरा सांसारिक होकर भी उस वैराग्य को जीवन भर के लिए ओढ़ लेती है, जो स्वयं बुद्ध के लिए भी स्तुत्य बन जाता है। यशोधरा वैभव के बीच वैराग्य को स्वीकार ही नहीं करती बल्कि सिद्ध भी करती है और इस तरह अपने सम्पूर्ण जीवन को विरहाग्नि में तपाते हुए संसार को दिखा देती है कि "स्व को स्वाहा किए बिना, शेष को समाप्त किये बिना विशेष नहीं हुआ जाता।"

उपन्यास की लेखिका अनघा जोगलेकर व्यवसाय से इलेक्ट्रॉनिक इंजीनियर हैं, लेकिन साहित्य में उनकी गहरी अभिरुचि है। यशोधरा से पूर्व वे भगवान् श्रीराम, बाजीराव बल्लाल और अश्वत्थामा जैसे ऐतिहासिक और पौराणिक पात्रों पर उपन्यास लिख चुकी हैं और इनके लिए वह विभिन्न संस्थाओं द्वारा समय–समय पर सम्मानित भी की जा चुकी हैं। यशोधरा मूलतः एक चरित्र प्रधान उपन्यास है, जिसमें मुख्य पात्र– बुद्ध और यशोधरा के जीवन की मुख्य घटनाओं को माध्यम बनाकर उपेक्षिता यशोधरा के दुखमय जीवन की गाथा प्रस्तुत की गई है। अन्य गौण पात्रों के साथ विभिन्न आनुषंगिक घटनाओं और प्रसंगों द्वारा उपन्यास की कथावस्तु को विस्तार दिया गया है। कथ्य की बात करें तो लेखिका ने विभिन्न सम्बंधित स्रोत ग्रंथों से सामग्री संकलित की है, और उसे अपनी अभिव्यक्ति शैली और रचनाकौशल से एक नवीन रूप प्रदान किया है। यशोधरा के चित्रण में लेखिका ने अपनी उर्वरता का बखूबी प्रयोग किया है, जिस कारण अधिकांश घटनाएं पढ़ी–सुनी होने के बावजूद उपन्यास नीरस होने से बच जाता है। भाव–जगत की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास और गुप्त जी की यशोधरा में पर्याप्त साम्य नजर आता है। यशोधरा के मनोभाव, उसका अंतद्वंद्व, अपने आत्मसम्मान और स्वाभिमान के प्रति उसकी सचेतनता आदि के चित्रण में लेखिका गुप्त जी से प्रभावित होकर उनका अनुसरण करती दीखती है। गुप्त जी की यशोधरा को गौतम बुद्ध से शिकायत है कि काश, सिद्धार्थ उसे अपने मुक्ति की बाधा न समझते, बल्कि वे मुझसे कहके जाते, ठीक उसी तरह प्रस्तुत उपन्यास की नायिका को भी इस बात का दुःख सालता है कि सिद्धार्थ "उससे एक बार अपने मन की बात कहते तो क्या मैं उन्हें जाने से रोक लेती!, क्या मैं इतनी दुर्बल थी कि उन्हें सिद्धि पाने से रोकती या वे इतने दुर्बल थे कि मेरे साथ रहते हुए सिद्धि प्राप्त नहीं कर पाते।" इसी संतप्तता के कारण जब बुद्ध ज्ञान प्राप्त कर वापस आते हैं तो उसका मानिनी स्वरुप जागृत हो जाता है, और उनसे मिलने जाने की बात ठुकराकर अपनी सखी नीरा से कहती है कि "वे मुझे छोड़कर गए थे, मैं उन्हें नहीं। मुझमें कुछ सार्थक होगा तो वो मुझसे मिलने अवश्य आयेंगे।"

लेखिका ने कपिलवस्तु को उपन्यास का सूत्रधार बनाकर आद्योपांत कथा का सृजन किया है जो प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से निश्चित ही एक अच्छा प्रयोग सिद्ध हुआ है। इस प्रयोग से लेखिका को जहाँ ऐतिहासिक प्रसंगों के वर्णन की स्वतंत्रता मिल गई है, वहीं तथ्यपरक विश्लेषणात्मकता के बावजूद उपन्यास की सहजता और रोचकता भी कहीं बाधित नहीं हुई है। उपन्यास में इतिहास और कल्पना का अपूर्व संयोग देखा जा सकता है। इतिहास के तथ्यों से तोड़–मरोड़ किये बिना उसे रोचक और नवीन कथा का ताना–बाना देने में लेखिका का श्रम और उसमें लब्ध उसकी सफलता स्पष्ट नजर आती है। चूँकि उपन्यास के केंद्र में यशोधरा है, इसलिए उसके चरित्र को मानवीय गुणों से भरपूर आदर्श पत्नी, माता, वधू और आत्मगौरव संपन्न नारी के रूप में चित्रित किया गया है। यशोधरा के पात्र को सम–सामयिक बनाने और उसे आधुनिक सन्दर्भ से जोड़ने के लिए लेखिका द्वारा ऐसे अनेक प्रसंगों की उद्‌भावना की गई है जहां यशोधरा की स्त्री पक्षधरता मुखर कर सामने आती है, फिर चाहें वह पुरुष–स्त्री को समाज में समान अवसर और समान स्थान देने का मुद्दा हो, स्त्री को दोयम दर्जे पर रखने के खिलाफ खुली अस्वीकृति हो, या फिर स्त्री की स्वतंत्रता का अति महत्वपूर्ण प्रश्न ही क्यों न हो। शायद इसी कारण लेखिका ने स्त्री समाज में जाग्रति हेतु मासिक धर्म जैसे टैबू और निषिद्ध क्षेत्र समझे जाने वाले विषय पर भी चर्चा करने से परहेज नहीं किया है।

उपन्यास के प्रारंभ में प्रसिद्ध फिल्म अभिनेता आशुतोष राणा द्वारा उपन्यास की नायिका और समस्त स्त्री जाति के लिए की गई सम्मानजनक टिप्पणी और तत्सम्बन्धी विचार काफी महत्वपूर्ण हैं, जो प्रभावित करते हैं। इस तरह के मंतव्य समाज की मानसिकता को बदलने में उत्प्रेरक हैं। इसीलिए इनके अपने खास मायने हैं। बिम्बा, गोपा, भाद्रकच्छाना आदि नामों से जानी जाने वाली यशोधरा का अर्थ है– यश को धारण करने वाली। यशोधरा संपूर्ण उपन्यास में स्वार्जित इस मानव दुर्लभ यश को प्राप्त करती दिखाई पड़ती है और यही उपन्यास का प्रतिपाद्य भी है। भले ही यह सत्य है कि बुद्ध ने बुद्धत्व द्वारा अमरता प्राप्त की, लेकिन उससे भी बड़ा सत्य यह है कि इस

बुद्धत्व के पीछे वीतरागी यशोधरा का वह अद्भुत साहचर्य, असाधारण संबल और निश्छल त्याग है जो उन्हें जन्म–जन्मान्तरों से यशोधरा के रूप में मिलता आया था। उपन्यास पढ़कर इस बात का अहसास होता है कि हमारे समाज में, हमारे इतिहास में हमारी संस्कृति में यशोधरा जैसे अनेक नारी पात्र ऐसे हैं, जिनकी अपनी खास पहचान है और उनकी इसी पहचान को जीवित रखने के लिए उनका निरपेक्ष मूल्यांकन किया जाना अभी शेष है। उपन्यास अपने पीछे ऐसे कई विचारणीय प्रश्न छोड़ जाता है, जिन पर सामूहिक चिंतन अपेक्षित है।

ख़्वाहिशें

आईएसबीएन : 978-81-929060-4-1 संस्करण : 2015, मूल्य : 300/-

सज़ायाफ़्ता कठपुतली

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-946859-0-6
संस्करण : 2020, मूल्य : 250/-

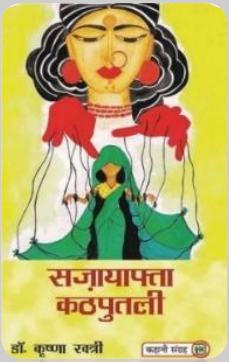

कविता

डॉ. जयप्रकाश तिवारी
dr.jptiwari@gmail.com

आषाढ़ का एक दिन : संदर्भ पुराने, अर्थ नए

आया आषाढ़ बढ़ गया ताप
उठी हवाएँ गगन मे तेज तेज
मन मे हलचल उससे भी तेज
घिर आई घटाएँ चहुं ओर से
स्मृति पटल छाये घनघोर मेघ,
मन कितना चंचल मनचला है
जा पहुंचा अतीत की उस घड़ी में
जहां भीगे थे हम दोनों आषाढ़ में
बादलों की जलधारा में ही नहीं
भावों की वर्षा, शब्द फुहारों में।
बसी थी कितनी ही मोहक कल्पनाएं
संवेदनाओं की बलखाती लहरों में ॥

दशकों बाद...

इन स्मृतियों ने इतनी हलचल मचाई
अब लौट आया अतीत से वर्तमान में
रिमझिम फुहारें बड़ी बूंदों मे बदल गयी
बरसात ने पकड़ लिया जोर और मैं
भीग गया पूरा ही आषाढ़ की बरसात में,
ठीक उसी तरह जिस तरह भीगे थे तब
हो गया था तन–मन गीला हमारा
तब उस समय भी, और आज अब भी।
हाथ में मेरे वर्षा से बचाव का अस्त्र
यही कलम तब भी थी... अब भी है
लेकिन कलम वर्षा से बचाती कहाँ है
यह तो और भिगो देती है, अंदर तक॥

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

सहसा बिजली जोर से कौंधी–कड़की
इस चमक मे मुझे साया सी दिखी
वो साया... तुम थी, भला भूलता कैसे ?
दौड़कर तुझे पकड़ लिया, तू भाग न पाई
कृशकाय–बदन, धँसी–आँखें, पिचके कपोल
कुछ कहो या न कहो, खोल दी सारी पोल
एक अलगाव ने कितना बदल दिया तुम्हें
पूछने पर कुछ बताती नहीं, हो गयी हो मौन
ऊपर से दिखता नहीं, कोई घाव–चोट–मरहम
हैरान हूँ, विस्मित भी, कैसी हो गयी हो तुम
अब न तुझे वर्षा भिगो पाती, न ही कलम
यह कलम तो मदहोश थी तुम्हें लिखने में
कब सोचा इसने, देखने की तुम्हें वास्तव में ?

तुम्हें 'मल्लिका' का किरदार बहुत पसंद था
और समय ने सचमुच मल्लिका बना दिया
मैं मातृगुप्त बनकर राज–सुख भोगता रहा
'मेघदूत' और 'ऋतुसंहार'... ही लिखता रहा
कभी सुना था– इतिहास अपने को दुहराता है
सचमुच इतिहास अपने को दुहराता है...
ऐतिहासिक मातृगुप्त निभा नहीं पाया था
न राज–धर्म, न प्रिय–धर्म, न प्रेयसि–धर्म
लेकिन यह मातृगुप्त विधिवत निभाएगा
राज–धर्म भी, प्रिय–धर्म भी, प्रेयसि–धर्म भी
आज इतिहास अब ...एकदम बदल जाएगा
जब ऐश्वर्य की सिंदूरी रेखा मांग सजाएगा
और कभी अट्टहास करने वाला यही समय
अब भांति–भांति के मंगल गीत गाएगा॥

दो गजलें

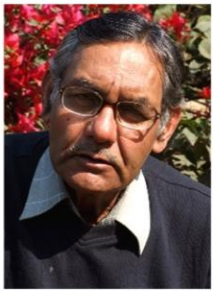

विज्ञान व्रत

vigyanvrat@gmail.com

एक

चुप्पी से बतियाऊँ कैसे
ये लहजा अपनाऊँ कैसे

रहना और कहीं नामुमकिन
खुद में भी रह पाऊँ कैसे

जिनका उत्तर केवल तुम हो
ऐसे प्रश्न उठाऊँ कैसे

सब–कुछ समझे बैठा है वो
फिर उसको समझाऊँ कैसे

जिसने तुमको दुश्मन समझा
मैं उसका हो जाऊँ कैसे

किसने दर्द दिया है मुझको
सबको सच बतलाऊँ कैसे

मुझको खुद पर शक होता है
पर इल्जाम लगाऊँ कैसे!

दो

आपका खत मिल गया है
और मुझको पढ़ रहा है

चित्र यों तो आपका है
सिर्फ चेहरा माँगता है

वो मुझे पहचानता है
पर दिखे अंजान – सा है

वो जो इतना डर रहा है
सामने क्या आईना है

हादिसा जिसने किया है
पूछता है क्या हुआ है!

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कविता

सारिका शर्मा
sarikasanjeev3@gmail.com

स्वार्थ से परिपूर्ण बुद्धिमत्ता

हायब्रीड के पेड़ हो गए,
कंक्रीट के मकान।
मिट्टी को तरस गए,
अछूता हो गया
नीला तारों भरा आसमान।

बड़े–बड़े मालों में पड़ने लगे झूले,
टहनी की अटखेलियाँ हम कैसे भूलें ?
दे–देकर आलिंगन नापा करते थे पेड़ों को,
उछल–उछलकर तोड़ के खा जाते थे फलों को।
मिट्ठू का झूठा अमरूद दवा का काम करता था
कोयल की कूक से आमों में खुशबू का संचार होता था
सप्तऋषि और चंद्र–तारका गिना करते थे बिन दूरबीन के
जुगनु की क्रीड़ा से रंगमहल सजता था
झिंगुरों के स्वर से लय से लय मिलता था
रात की शीतल चांदनी हर लेती थी अँधियारे को,

अब तो कृत्रिम उजाले ने हर लिया है कीड़ों का जीवन।
खोज–खोज के थक गयी हूँ
ना मिलती है– मिट्टी की खुशबू
जिसकी सुगंध से मुँह में पानी भर आता था।
कहीं खो गई है–
रात की हवा में घुलनेवाली रातरानी
जो मदहोशी की चादर ओढ़े आती थी।

बिन ओस के प्यासे हो गये गमलों में लगे पेड़।
कैसे तृष्णा मिटेगी बिन शरद के चंद्रमा के ?
बँट गयी है प्राणवायु छोटी–छोटी बोतलों में।

पशु–पक्षियों की बुद्धिमत्ता का एहसास
आज हुआ,
खाकर फलों को
विष्टा से बड़े–बड़े बरगद, पीपल को जन्म जिन्होंने दिया।
स्वार्थ से परिपूर्ण बुद्धिमत्ता
इंसान ने खूब कमाई
इसीलिए तो
अब पिंजरों में
बंद रहने की सजा उसने पाई।

विकास का आधार मानवाधिकार

डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

आईएसबीएन : 978-93-90548-82-8

संस्करण : 2020, मूल्य : 225/-

नारी तुम शक्तिपुंज

कविता

नारी तुम हो शक्तिपुंज,
दिखती दुर्बल, लुंज–पुंज–सी
तेरे भीतर सृजन शक्ति,
दिखती तुम निर्बल अबला–सी।

एक ओर स्वाभिमान हत–आहत,
स्रवत सलिल राजीव दल लोच न
एक ओर महिषासुर मर्दनी,
तुम चंड, मुंड कृपाणिनी।

एक रूप खूब लड़ी मर्दानी,
झांसी वाली रानी हो तुम।
कोख में मारी हो जाती तुम,
नवदुर्गों में भोजन पाती हो।

तिल–तिलकर जीने–मरने वाली तुम,
संतानों की भाग्य विधाता कहलाती हो।
बचा–खुचा, रूखा–सूखा खाने वाली तुम,
अन्नपूर्णा कहलाती हो।

वेदों की ऋचाओं सी,
मनमोहन की राधा हो तुम।
पतित पावनी गंगा–सी,
मान–मर्दित निर्भया हो तुम।

राजमहल में पली–बढ़ी,
राजा राम की पतिव्रता सीता हो तुम।
काल कवलित सत्यवान की,
अजर अमर सावित्री हो तुम।
अजब–गजब कहानी तेरी,
घर–घर में शोषित, मंदिर में पूजित हो तुम।

सुरभि श्रीवास्तव
surabhi30ag@gmail.com

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कविता

शुचि गुप्ता
shuchi.gpt7@gmail.com

नियति की अनीति

अपने स्वप्न–गर्भ में ही हुए खंडित
न रूप मिल सका, न आकार
किलकारियां भर हमारे आंगन
में क्रीड़ा करते, मंत्रमुग्ध होते हम
कहां हुआ संभव!

नीरवता गूंजती कानों में
अधरों पर पसरा है मौन
हमारा संबंध रहा विवश
प्राण वायु के लिए
घुटन में कराहती
वेदना में तड़पती रही
हमारे प्रेम की जिजीविषा!

हमारी आशाओं का सूर्य
आवरित हुआ क्रूर काल के मेघों से
और कब से रात्रि ही रात्रि
विचरती जीवन में
कृत्रिम भ्रमों से कब तक
स्वप्नों को स्पंदन दे पाऊं
तुम्हीं कहो कैसे स्वीकार
नियति की यह अनीति कर पाऊं!

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कविता

उसका नाम मोहब्बत है

जिसके होने से चलती धड़कन,
और जिसके छूटने से साँसे छूटे,
उसका नाम मोहब्बत है।
जो पत्थर को भगवान बनाये,
महबूब को देखे तो खुदा भुलाए,
उसका नाम मोहब्बत है।
ऊँच–नीच, जात–पात न देखे,
जो मामूली को भी खास बनाये,
उसका नाम मोहब्बत है।
सारी दुनिया से बगावत कर जाए,
जीना जिसके बिना दूभर हो जाए,
उसका नाम मोहब्बत है।
मुस्कुराते होंठो की उदासी पहचाने,
और जो बीना कहे सब समझ जाए,
उसका नाम मोहब्बत है।
अपना जीवन दूसरों पर बलिदान करे,
जो मानव को मानवता से जोड़ें,
उसका नाम मोहब्बत है।
वो जो दुगना कर दे खुशियों को,
और साझा करले दुख दर्द किसी का,
उसका नाम मोहब्बत है।
जो किसी के शरीर को
अपवित्र किए बिना प्रेम करे,
उसका नाम मोहब्बत है।
ना तुम अछूते रहे ना हम,
सबको अपने रंग में रंग दे,
उसका नाम मोहब्बत है।
मैं क्या मोहब्बत की कहानी बयाँ करूँगी,
जो भगवान को जमीं पर लाये,
उसका नाम मोहब्बत है।

सोनल ओमर
sonal.omaro6@gmail.com

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कविता

तुम्हारे लिए

रीता मिश्रा तिवारी
ravi.tewary94311@hotmail.com

आज कई दशकों बाद
लिखने के लिए
मैंने कलम उठाई है!

वैसे तो
कलम कभी छूटी ही नहीं थी
मेरे हाथ से!

पहले भी लिखती थी
बच्चों की कॉपियां
और क्लास के बोर्ड पर!
पर आज....
उठाई है कलम लिखने के लिए कुछ और!

दशकों पहले
लिखा करती थी
मन की भावनाओं को
कागज पर शब्दों का रूप देती!
आज फिर बरसों बाद दबी–सी...
एक आवाज आई!
'तन्हाइयों से बाहर आ... और लिख!'

पहले भी लिखा करती थी तुम्हारे लिए...
आज फिर से उठाई है कलम
सिर्फ... तुम्हारे लिए!!

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कविता

अंकिता गौराई
lalitabinwal603@gmail.com

स्वर्ण ज्योत्स्ना–सी

अंशुमाली की स्वर्ण ज्योत्स्ना–सी
किरण जाल बिखेर प्रकृति सुन्दरी
तारों में ओझल हो जाना उसका
गौरी बाँहों के सुंदर हार पहन कर
रातों में मधुर करूण विहाग तान
ईश–राग का हृदय–शांत तपोवन

अंकशायी शिशु–सी सरलता उसकी
कितनी बाल मधुर कल्पना उसकी
तार खीचें है अन्तरतम के कोमल
गौधूलि सा पावन अवसर वचन
रास–रसायन वाणी में भरपूर
ईर्ष्या का प्रवेश निषेध हृदय–प्रदेश

अंग–अंग में लावण्य लोच महा
कितना–कैसे उज्ज्वल रूप रहा
तान विहाग की सकरूण पुकार
गौरव झलके उसके भाल महा
राज छिपे है मधुर मुस्कानों में
ईश कह देता कहानी कानों में।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

तराश दो मुझे

रंजना फतेपुरकर
98930 34331

तुम्हारे रेशमी अहसासों की चांदनी को
पलकों पर सजा लेती हूं मैं
तुम्हारी भीगी यादों से
दुपट्टे को हर पल महका लेती हूं मैं
तुम तराश दो मुझे पत्थरों पर
ताजमहल की तरह
चांदनी रात में मीनारों के साए तले
चाहत की शमा जला लेती हूं मैं!

सितारों की नूर भरी रोशनी में
प्यार का आशियाना बना लेती हूं मैं
दिल की हर धड़कन को
तुम्हारे ख्वाबों से सजा लेती हूं मैं
ना करो यूँ बातें
फासले बनाने की
चाहत के रंगभरे बादल बन
तुम्हारे खयालों में बरसना चाहती हूं मैं!

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

गजल

फारूक सुलेमानी
Farooqsulemani07@gmail.com

अंजान शहर की धूल की मिट्टी हूँ मैं,
अनजान शहर की गुमनाम चिट्ठी हूँ मैं।

सपने सुहाने बहुत लेकर आया हूँ मैं,
फूटी किस्मत चमकाने आया हूँ मैं।

रोज के तफेड़ों से घबरा गया हूँ मैं,
शहर की चंका चोंध से चकरा गया हूँ मैं।

मेहनत पर किस्मत अजमाने आया हूँ मैं
अच्छी खासी पैठ ओर धाक जमाने आया हूँ मैं।

अपनो को रूलाकर गैरों को मनाने आया हूँ मैं,
घर की पूरी छोड़ आधी कमाने आया हूँ मैं।

सगे रिश्ते को छोड़ नये संबंध बनाने आया हूँ मैं,
खेत–बाग छोड़ दो कमरों का घर बसाने आया हूँ मैं।

काका – काकी ताऊ – ताई सब छोड़ आया हूँ मैं,
अजनबियों के झूंड मे नये रिश्ते निभाने आया हूँ मैं।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

डॉ. विनय कुमार श्रीवास्तव
dr.vinaysrivastavapbh@gmail.com

लाशों का शहर बन बैठा है, आज हर एक शहर।
बहते हुए देखा है ये सब ने, पाकर गंगा में लहर।

क्या हुआ है मेरे शहर को, ये कैसी कयामत आई।
खुदा दूर करे अपने रहम से, ये जो है आफत आई।

कुछ पता न चले ये मौत, कब यह किसको निगले।
अब तो ये दौर है आया, कि जनाजा भी न निकले।

हर तरफ डर ही डर है, वायरस ने सताया है बहुत।
वैश्विक महामारी है ये, कोरोना ने रुलाया है बहुत।

किसी के माँ ने किसी के पिता ने ये दुनिया छोड़ी।
किसी के पति ने किसी की पत्नी ने दुनिया छोड़ी।

किसी के भाई ने किसी की बहन ने जहां छोड़ा है।
किसी के बेटे ने किसी की बेटी ने ये जहां छोड़ा है।

किसी को चिता मिली, किसी को वो भी न नसीब।
किसी को दफन किया, किसी को कफन न नसीब।

कितना बुरा समय है ये आया, परेशां अमीर गरीब।
विद्युत से शवदाह कहीं, गंगा जी में प्रवाहित गरीब।

कहीं–कहीं तो किसी का पूरा परिवार ही चल बसा।
कैसा मंजर है आँखों को, जो ये भी देखना है पड़ा।

अब तो रुक जाये कयामत ये, अब सहा नहीं जाये।
कुछ समझ में नहीं आता है, ऐसे में रहा कैसे जाये।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

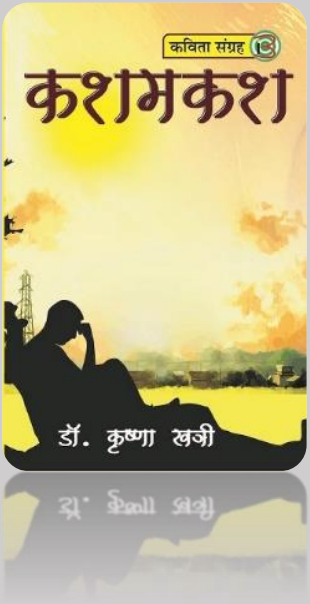

कशमकश

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-8-5
संस्करण : 2020, मूल्य : 250/-

सठियाई औरत

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-9-2
संस्करण : 2020, मूल्य : 250/-

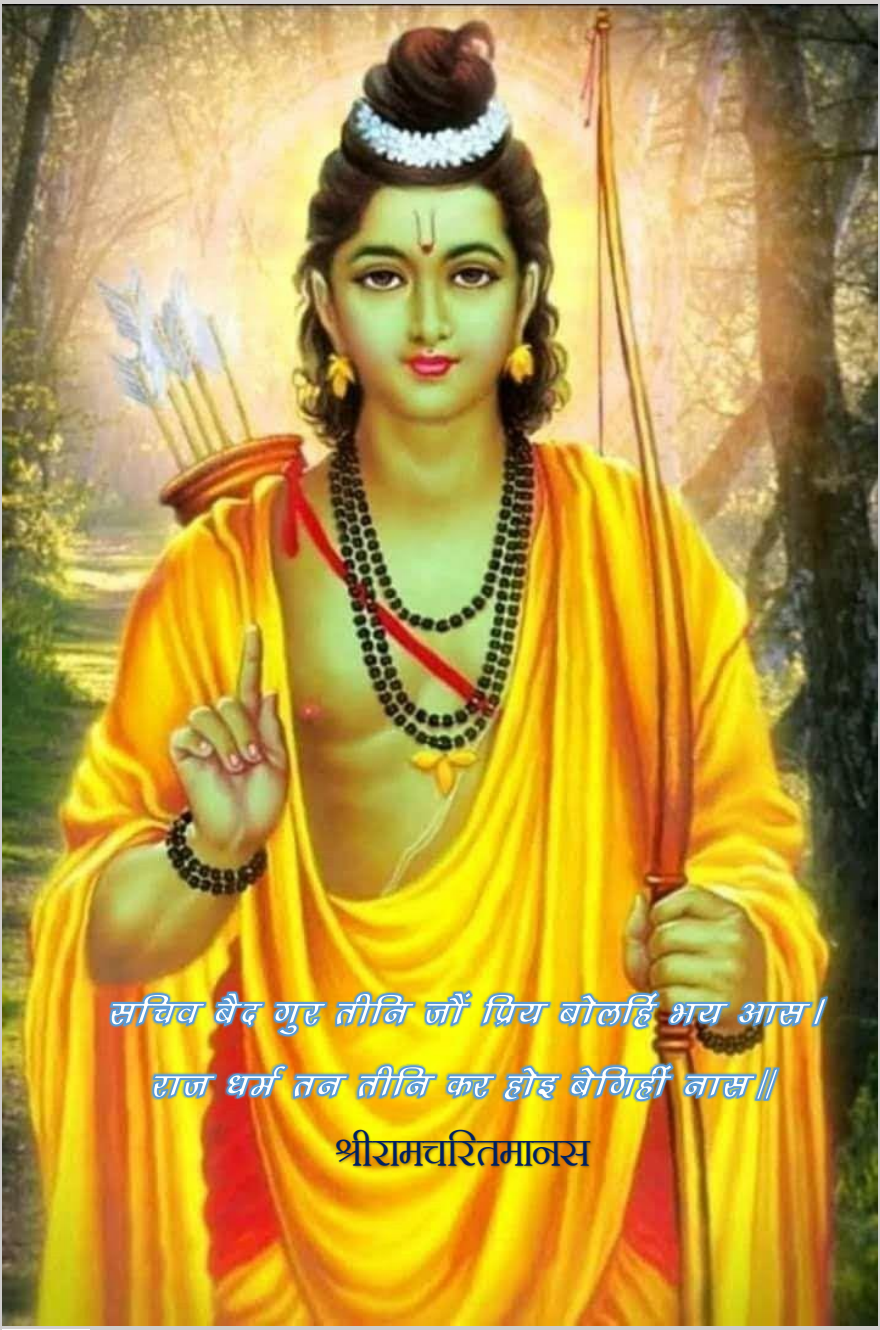
सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास॥
श्रीरामचरितमानस